ॐ श्रीपरमात्मने नमः
कल्याण
लालजी
वर्ष ५१]
'पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना !'
[संख्या ४

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,७०,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर वैशाख, श्रीकृष्ण-संवत् ५२११, अप्रैल १९८५

चित्र-सूची

प्रत्येक साधारण अङ्कका मूल्य
भारतमें १.०० रु०
विदेशमें १० पैंस

जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

कल्याणका वार्षिक मूल्य
भारतमें २४.०० रु०
विदेशमें ६०.०० रु०
(४ पौण्ड)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका

गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये जगदीशप्रसाद जालानद्वारा गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

[भारत-सरकारद्वारा उपलब्ध कराये गये रियायती मूल्यके कागजपर मुद्रित]

अर्धनारीश्वर

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

कल्याण
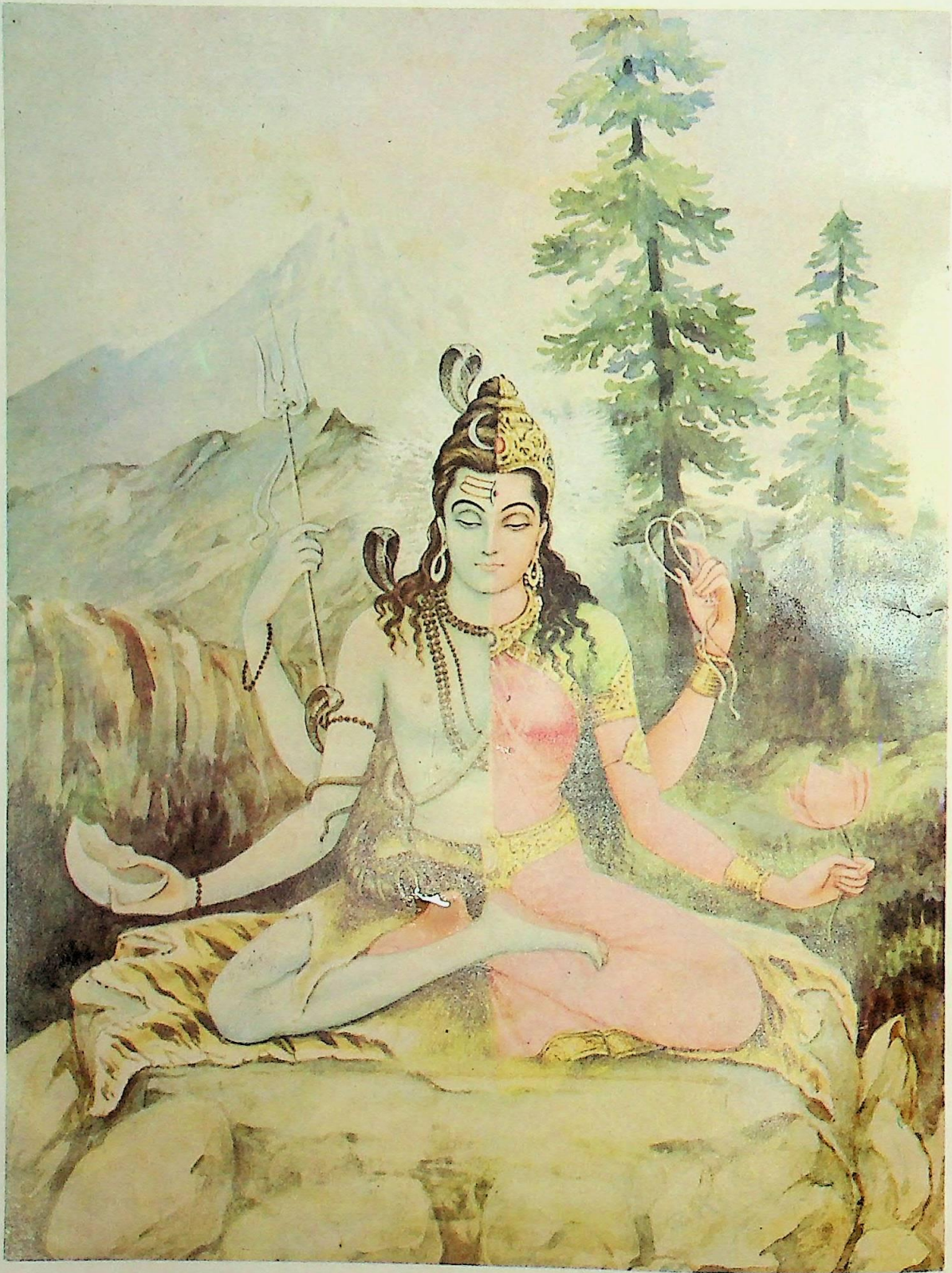
वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥

वर्ष ५९ } गोरखपुर, सौर वैशाख, श्रीकृष्ण-संवत् ५२११, अप्रैल १९८५ ई० { संख्या ४
पूर्ण संख्या ७०१

अर्धनारीश्वर महादेव

अर्धेन देवदेवस्य नारीरूपं सुशोभनम् । ईशार्धे तु जटाभागो बालेन्दुकलया युतः ॥
उमार्धे चापि दातव्यौ सीमन्ततिलकावुभौ । वासुकिं दक्षिणे कर्णे वामे कुण्डलमादिशेत् ॥
बालिका चोपरिष्टात्तु कपालं दक्षिणे करे । त्रिशूलं वाऽपि कर्तव्यं देवदेवस्य शूलिनः ॥
वामतो दर्पणं दद्यादुत्पलं च विशेषतः । वामबाहुश्च कर्तव्यः केयूरवलयान्वितः ॥

'अर्धनारीश्वर-मूर्तिमें भगवान् शंकरकी बायीं ओर आधे भागमें अति सुन्दर स्त्रीका रूप होता है । दाहिनी ओर के पुरुषभागमें प्रतिमार्ध जटाजूट तथा बालचन्द्रकी कलासे युक्त रहती है । उमाके अर्धभागमें मस्तकपर माँगमें सिन्दूर और ललाटपर तिलक होना चाहिये । दाहिने कानमें वासुकि नाग और बाँएँ कानमें कुण्डलकी रचना करनी चाहिये । सिरपर दाहिनी ओर केशोंके आभूषण तथा कानमें बाली हो । शिवके हाथमें कपाल या त्रिशूल तथा बायें (पार्वतीके) हाथमें दर्पण और कमल रहता है । इसी प्रकार बायें बाहुको बाजूबंद और कङ्कणसे युक्त बनाना चाहिये और दाहिनी ओर यज्ञोपवीत । (मत्स्यपुराण २६० । १–५)

अप्रैल १२६–१२७—

(गताङ्कसे आगे)

न भस्माङ्गारकाष्ठेन नखशस्त्रेण चर्मभिः । न शृङ्गास्थिकपालैश्च क्वचिद् वास्तु विलेखयेत् ॥ १४ ॥
एभिर्विलिखितं कुर्याद् दुखशोकभयादिकम् । यदा गृहप्रवेशः स्याच्छिल्पी तत्रापि लक्षयेत् ॥ १५ ॥
स्तम्भसूत्रादिकं तद्वच्छुभाशुभफलप्रदम् । आदित्याभिमुखं रौति शकुनिः परुषं यदि ॥ १६ ॥
तुल्यकालं स्पृशेदङ्गं गृहभर्तुर्यदात्मनः । वास्त्वङ्गे तद् विजानीयान्नरशल्यं भयप्रदम् ॥ १७ ॥
अङ्कनानन्तरं यत्र हस्त्यश्वश्वापदं भवेत् । तदङ्गसम्भवं विन्द्यात् तत्र शल्यं विचक्षणः ॥ १८ ॥
प्रसार्यमाणे सूत्रे तु श्वागोमायुर्विलङ्घते । तत्तु शल्यं विजानीयात् खरशब्देऽतिभैरवे ॥ १९ ॥
यदीशाने तु दिग्भागे मधुरं रौति वायसः । धनं तत्र विजानीयाद् भागे वा स्वाम्यधिष्ठिते ॥ २० ॥
सूत्रच्छेदे भवेन्मृत्युर्व्याधिः कीले त्वधोमुखे । अङ्गारेषु तथोन्मादं कपालेषु च सम्भ्रमम् ॥ २१ ॥
कम्बुशल्येषु जानीयात्पौंश्चल्यं स्त्रीषु वास्तुवित् । गृहभर्तुर्गृहस्यापि विनाशः शिल्पिसम्भ्रमे ॥ २२ ॥
स्तम्भे स्कन्धच्युते कुम्भे शिरोरोगं विनिर्दिशेत् । कुम्भापहारे सर्वस्य कुलस्यापि क्षयो भवेत् ॥ २३ ॥
मृत्युः स्थानच्युते कुम्भे भग्ने बन्धं विदुर्बुधाः । करसंख्याविनाशे तु नाशं गृहपतेर्विदुः ॥ २४ ॥
बीजौषधिविहीने तु भूतेभ्यो भयमादिशेत् । ततः प्रदक्षिणेनान्यान्यसेत् स्तम्भान् विचक्षणः ॥ २५ ॥
यस्माद् भयंकरा नृणां योजिता ह्यप्रदक्षिणम् ।

राख, अंगार, काष्ठ, नख, शास्त्र, चर्म, सींग, हड्डी, कपाल—इन वस्तुओंद्वारा कहीं भी वास्तुके चिह्न नहीं बनाना चाहिये; क्योंकि इनके द्वारा बनाया गया चिह्न दुःख, शोक और भय आदि उत्पन्न करता है। जिस समय गृहप्रवेश हो, उस समय कारीगर का भी रहना उचित है। स्तम्भारोपण और सूत्रपातके समय पूर्ववत् शुभ एवं अशुभ फल देनेवाले शुक होते हैं। यदि ऐसे अवसरोंपर कोई पक्षी सूर्यकी ओर मुख कर कठोर बाणी बोलता है या उस समय गृहपति अपने शरीरके किसी अङ्गपर हाथ रखता है तो समझ लेना चाहिये कि वास्तुके उसी पर भय प्रदान करनेवाली मनुष्यकी हड्डी पड़ी हुई है। सूत्र अङ्कित कर देनेके बाद यदि गृहपति अपने किसी अङ्गका स्पर्श करता है तो वास्तुके उसी अङ्गमें हाथी, अश्व तथा कुत्तेकी हड्डियाँ हैं, ऐसा बुद्धिमान् पुरुषको समझ लेना चाहिये। सूत्रको फैलाते समय उसे शृगाल या कुत्ता लाँघ जाता है और गदहा अत्यन्त भयंकर चीत्कार करता है तो ठीक उस स्थानपर हड्डी जाननी चाहिये। यदि सूत्रपातके समय ईशान कोणमें कौआ मीठे स्वरसे बोलता हो तो वास्तुके उस भागमें या जहाँ गृहपति खड़ा है, वहाँ धन है—ऐसा जानना चाहिये। सूत्रपातके समय यदि सूत्र टूट जाता है तो गृहपतिकी मृत्यु होती है। वास्तुवेत्ताको ऐसा समझना चाहिये कि कीलके नीचेकी ओर झुक जानेपर व्याधि, अंगार दिखायी पड़नेपर उन्माद, कपाल दीख पड़नेपर भय और शङ्ख या घोंघेकी हड्डी मिलनेपर कुलाङ्गनाओंमें व्यभिचारकी सम्भावना रहती है। भवन-निर्माणके समय कारीगरके पागल हो जानेपर गृहपति और घरका विनाश हो जाता है। स्थापित किये हुए स्तम्भ या कुम्भके कंधेपर गिर जानेसे गृहपतिके सिरमें रोग होता है तथा कलशकी चोरी हो जानेपर समूचे कुलका विनाश हो जाता है। कुम्भके अपने स्थानसे च्युत हो जानेपर गृहस्वामीकी मृत्यु होती है तथा फूट जानेपर वह बन्धनमें पड़ता है—ऐसा पण्डितोंने कहा है। गृहारम्भके समय हाथोंकी परिमाण-संख्या नष्ट हो जानेपर गृहपतिका नाश समझना चाहिये। बीज और ओषधियोंसे विहीन होनेपर भूतोंसे भय होता है। अतः विचारवान् पुरुष प्रदक्षिण-क्रमसे अन्य स्तम्भोंकी स्थापना करे; क्योंकि प्रदक्षिणक्रमके बिना स्थापित किये गये स्तम्भ मनुष्योंके लिये भयदायक होते हैं ॥ १४—२५½ ॥

रक्षां कुर्वीत यत्नेन स्तम्भोपद्रवनाशिनीम् ॥ २६ ॥
तथा फलवतीं शाखां स्तम्भोपरि निवेशयेत् । प्रागुदक्प्रवणं कुर्याद् दिङ्मूढं तु न कारयेत् ॥ २७ ॥

*

स्तम्भं वा भवनं वापि द्वारं वासगृहं तथा। दिङ्मूढे* कुलनाशः स्यान्न च संवर्धयेद् गृहम् ॥२८॥
यदि संवर्धयेद् गेहं सर्वदिक्षु विवर्धयेत्। पूर्वेण वर्धितं वास्तु कुर्याद् वैराणि सर्वदा ॥ २९ ॥
दक्षिणे वर्धितं वास्तु मृत्यवे स्यान्न संशयः। पश्चाद् विवृद्धं यद् वास्तु तदर्थक्षयकारकम् ॥ ३० ॥
वर्धापितं तथा सौम्ये बहुसन्तापकारकम्। आग्नेये यत्र वृद्धिः स्यात् तदग्निभयदं भवेत् ॥ ३१ ॥
वर्धितं राक्षसे कोणे शिशुक्षयकरं भवेत्। वर्धापितं तु वायव्ये वातव्याधिप्रकोपकृत् ॥ ३२ ॥
ईशान्यामन्नहानिः स्याद् वास्तौ संवर्धिते सदा। ईशाने देवतागारं तथा शान्तिगृहं भवेत् ॥ ३३ ॥
महानसं तथाग्नेये तत्पार्श्वे चोत्तरे जलम्। गृहस्योपस्करं सर्वं नैर्ऋत्ये स्थापयेद् बुधः ॥ ३४ ॥
बन्धस्थानं बहिः कुर्यात् स्नानमण्डपमेव च।
धनधान्यं च वायव्ये कर्मशालां ततो बहिः। एवं वास्तुविशेषः स्याद् गृहभर्तुः शुभावहः ॥ ३५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वास्तुविद्यायां गृहनिर्णयो नाम षट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५६ ॥

स्तम्भके उपद्रवोंका विनाश करनेवाली रक्षा-विधि भी यत्नपूर्वक सम्पन्न करनी चाहिये। इसके लिये स्तम्भके ऊपर फलोंसे युक्त वृक्षकी शाखा डाल देनी चाहिये। स्तम्भ उत्तर या पूर्वकी ओर ढालू होना चाहिये, अस्पष्ट दिशामें नहीं कराना चाहिये। इस बातका ध्यान भवन, स्तम्भ, निवासगृह तथा द्वार निर्माणके समय भी स्थापन रखना चाहिये; क्योंकि दिशाकी अस्पष्टतासे कुलका नाश हो जाता है। घरके किसी अंशको पिण्डसे आगे नहीं बढ़ाना चाहिये। यदि बढ़ाना ही हो तो सभी दिशामें बढ़ावे। पूर्व दिशामें बढ़ाया गया वास्तु सर्वदा वैर पैदा करता है, दक्षिण दिशाकी ओर बढ़ाया हुआ वास्तु मृत्युकारी होता है, इसमें संदेह नहीं है। जो वास्तु पश्चिम-की बढ़ाया जाता है, वह धनक्षयकारी होता है तथा उत्तरकी ओर बढ़ाया हुआ दुःख एवं सन्तापकी वृद्धि करता है। जहाँ अग्निकोणमें वृद्धि होती है, वहाँ वह अग्निका भय देनेवाला नैर्ऋत्यकोण बढ़ानेपर शिशुओंका विनाशक वायव्य कोणमें बढ़ानेपर वात-व्याधि-उत्पादक, ईशान कोणमें बढ़ानेपर अन्नके लिये हानि कारक होता है। गृहके ईशान कोणमें देवताका स्थान और शान्तिगृह, अग्निकोणमें रसोई घर और उसके बगलमें उत्तर दिशामें जलस्थान होना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष सभी घरेलू सामग्रियोंको नैर्ऋत्य कोणमें करे। पशुओं आदिके बाँधनेका स्थान और स्नानागार गृहके बाहर बनाये। वायव्य कोणमें अन्नादिका स्थान बनाये। इसी प्रकार कार्यशाला भी निवास-स्थानसे बाहर बनानी चाहिये। इस ढंगसे बना हुआ भवन गृहपतिके लिये मङ्गलकारी होता है ॥ २८—३५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वास्तुविद्याके प्रसङ्गमें गृहनिर्णय कथन नामक दो सौ छप्पनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥२५६॥

दो सौ सत्तावनवाँ अध्याय

गृहनिर्माण (वास्तुकार्य) में ग्राह्य काष्ठ

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दार्वाहरणमुत्तमम्। धनिष्ठापञ्चकं मुक्त्वा विष्ट्यादिकमतः परम् ॥ १ ॥
ततः सांवत्सरादिष्टे दिने यायाद् वनं बुधः। प्रथमं बलिपूजां च कुर्याद् वृक्षस्य सर्वदा ॥ २ ॥
पूर्वोत्तरेण पतितं गृहदारु प्रशस्यते। अन्यथा न शुभं विन्द्याद् याम्योपरि निपातनम् ॥ ३ ॥
क्षीरवृक्षोद्भवं दारु न गृहे विनिवेशयेत्। कृताधिवासं विहगैरनिलानलपीडितम् ॥ ४ ॥
गजावरुग्णं च तथा विद्युन्निर्घातपीडितम्। अर्धशुष्कं तथा दारु भग्नशुष्कं तथैव च ॥ ५ ॥

* वाल्मी० ३। ६०। ६, बृहत्संहि० ५३। ११५ के अनुसार जहाँ कोई निशान प्रतीत हो, वे भवनादि विमूढ कहे गये हैं।

चैत्यदेवालयोत्पन्नं नदीसङ्गमजं तथा। श्मशानकूपनिलयं तडागादिसमुद्भवम् ॥ ६ ॥
वर्जयेत् सर्वथा दारु यदीच्छेद् विपुलां श्रियम्। तथा कण्टकिनो वृक्षान् नीपनिम्बविभीतकान् ॥ ७ ॥
श्लेष्मातकानाम्रतरूंन्वर्जयेद्गृहकर्मणि। आसनाशोकमधुकसर्जशालाः शुभावहाः ॥ ८ ॥
चन्दनं पनसं धन्यं सुरदारु हरिद्रवः। द्वाभ्यामेकेन वा कुर्यात् त्रिभिर्वा भवनं शुभम् ॥ ९ ॥
बहुभिः कारितं यस्मादनेकभयदं भवेत्। एकैकशिंशपा धन्या श्रीपर्णी तिन्दुकी तथा ॥ १० ॥
एता नान्यसमायुक्ताः कदाचिच्छुभकारकाः। स्यन्दनः पनसस्तद्वत् सरलार्जुनपद्मकाः ॥ ११ ॥
एते नान्यसमायुक्ता वास्तुकार्यफलप्रदाः।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! अब मैं उत्तम काष्ठ लानेकी विधि बतलाता हूँ । धनिष्ठा आदि पाँच नक्षत्रों और इसके बाद भद्रा आदिको छोड़कर ज्योतिषी-द्वारा बताये गये शुभ दिनमें बुद्धिमान् पुरुष काष्ठ लानेके लिये वनको प्रस्थान करे । सर्वप्रथम ग्रहण किये जानेवाले वृक्षकी बलिपूजा करनी चाहिये । पूर्व तथा उत्तर दिशाकी ओर गिरनेवाले वृक्षका काष्ठ गृहनिर्माणमें मङ्गलकारी होता है तथा दक्षिणकी ओर गिरा हुआ अशुभ होता है । दूधवाले वृक्षोंका काष्ठ घरमें नहीं लगाना चाहिये । जो वृक्ष पक्षियोंद्वारा अधिष्ठित तथा वायु और अग्निसे पीड़ित हो, हाथीसे तोड़ा हुआ हो, बिजली गिरनेसे जल गया हो, जिसका आधा भाग सूख गया हो या कुछ अंश टूट-फूट गया हो, अश्वत्थवृक्ष समाधि या देव-मन्दिरसे निकले वृक्ष, नदीके संगमपर स्थित वृक्षोंको अथवा जो श्मशानभूमि तालाब आदि जलाशयोंपर उगा हुआ हो, ऐसे वृक्षोंको विपुल लक्ष्मीकी इच्छा करनेवाले व्यक्तिको छोड़ देना चाहिये । इसी प्रकार काँटेदार वृक्ष, कदम्ब, निम्ब, बहेड़ा, ढेरा और आमके वृक्षोंको भी गृहकर्ममें नहीं लेना चाहिये । असना, अशोक, महुआ, सर्ज और साखूके काष्ठ मङ्गलप्रद हैं । चन्दन, कटहल, देवदारु तथा दारुन्दीके काष्ठ धनप्रद कहे गये हैं । एक, दो या तीन प्रकारके काष्ठोंद्वारा बनाया गया भवन शुभ होता है; क्योंकि अनेक प्रकारके काष्ठोंसे बनाया हुआ भवन अनेकों भय देनेवाला होता है । धनदायक शीशम, श्रीपर्णी तथा तिन्दुकीके काष्ठको अकेले ही लगाना चाहिये; क्योंकि ये अन्य किसी काष्ठके साथ सम्मिलित कर देनेसे कभी मङ्गलकारी नहीं होते । इसी प्रकार धव, कटहल, चीड़, अर्जुन और पद्म वृक्ष भी अन्य काष्ठोंके साथ सम्मिलित होनेपर गृह कार्यके लिये शुभदायक नहीं होते ॥ १–११½ ॥

तरुच्छेदे महापीते गोधां विन्द्याद्विचक्षणः ॥ १२ ॥
मञ्जिष्ठवर्णे भेकः स्यान्नीले सर्पादि निर्दिशेत्। अरुणे सरटं विद्यान्मुक्ताभे शुकमादिशेत् ॥ १३ ॥
कपिले मूषकान् विद्यात्खड्गाभे जलमादिशेत्। एवंविधं सगर्भं तु वर्जयेद् वास्तुकर्मणि ॥ १४ ॥
पूर्वच्छिन्नं तु गृह्णीयान्निमित्तशकुनैः शुभैः। व्यासेन गुणिते दैर्घ्ये अष्टाभिर्वै हृते तथा ॥ १५ ॥
यच्छेषमायतं विन्द्यादष्टभेदं वदामि वः। ध्वजो धूमश्च सिंहश्च श्वा वृष एव च ॥ १६ ॥
हस्ती ध्वाङ्क्षश्च पूर्वाद्याः करशेषा भवन्त्यमी। ध्वजः सर्वमुखो धन्यः प्रत्यग्द्वारो विशेषतः ॥ १७ ॥
उदङ्मुखो भवेत् सिंहः प्राङ्मुखो वृषभो भवेत्। दक्षिणाभिमुखो हस्ती सप्तभिः समुदाहृतः ॥ १८ ॥
एकेन ध्वज उद्दिष्टस्त्रिभिः सिंहः प्रकीर्तितः। पञ्चभिर्वृषभः प्रोक्तो विकोणस्थांश्च वर्जयेत् ॥ १९ ॥
तमेवाष्टगुणं कृत्वा कारराशिं विचक्षणः। सप्तविंशाहृते भागे ऋक्षं विद्याद् विचक्षणः ॥ २० ॥
अष्टभिर्भाजिते ऋक्षे यः शेषः स व्ययो मतः।
व्ययाधिकं न कुर्वीत यतो दोषकरं भवेत्। आयाधिके भवेच्छान्तिरित्याह भगवान् हरिः ॥ २१ ॥
कृत्वाग्रतो द्विजवरानथ पूर्णकुम्भं दध्यक्षताम्रदलपुष्पफलोपशोभम्।
दत्त्वा हिरण्यवसनानि तदा द्विजेभ्यो माङ्गल्यशान्तिनिलयाय गृहं विशेत्तु ॥ २२ ॥

गृह्योक्तहोमविधिना बलिकर्म कुर्यात् प्रासादवास्तुशमने च विधिर्य उक्तः।
संतर्पयेद् विजवरानथ भक्ष्यभोज्यैः शुक्लाम्बरः स्वभवनं प्रविशेत् सधूपम् ॥ २३ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वास्तुविद्यानुकीर्तनं नाम सप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५७ ॥

वृक्ष काटते समय विचक्षण पुरुषको यदि पीले वर्णका चिह्न मिले तो भावी गृहमें गोहका, मंजीठ रंगका मिलनेपर मेढककका, नीला रंग मिलनेपर सर्पका, अरुण रंगसे गिरगिटका, मोतीके समान श्वेत चिह्नसे शुकका, कपिल वर्णसे चूहेका और तलवारकी भाँति चिह्न मिलनेपर जलका भय जानना चाहिये। इस प्रकारके गर्भवाले वृक्षको वास्तुकर्ममें त्याग देना चाहिये। पहलेसे कटे हुए वृक्षको शुभदायी निमित्त शकुनोंके साथ ग्रहण किया जा सकता है। घरके व्याससे लम्बाईके मानमें गुणाकर आठका भाग दे, जो शेष बचे उसे आयत जानना चाहिये। अब मैं आपलोगोंको आठका भेद बतला रहा हूँ। उन करशेषोंकी क्रमशः ध्वज, धूम, सिंह, खर, श्वान, वृषभ, हस्ती और काक संज्ञा होती है। चारों ओर मुखवाला तथा विशेषतया पश्चिम द्वारवाला ध्वज शुभकारी होता है। सिंहका उत्तर, वृषभका पूर्व, हाथीका दक्षिण मुख दुःखदायी होता है। सात विभागोंद्वारा इसे कहा जा चुका है। एक हाथसे ध्वजको, तीन हाथसे सिंहको और पाँच हाथसे वृषभको तो कहा गया। इनके अतिरिक्त जो त्रिकोणस्थ हों उन्हें व्यवहारमें नहीं लाना चाहिये। विचक्षण पुरुष उक्त करराशिके अंकको आठसे गुणाकर सत्ताईसका भाग देनेपर शेषको नक्षत्र माने। पुनः उस नक्षत्रमें आठका भाग देनेसे जो शेष बचता है, वह व्यय माना गया है। जिसमें व्यय अधिक निकले, उसे नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह दोषकारक होता है। आय अधिक होनेपर शान्ति होती है, ऐसा भगवान् हरिने कहा है। गृह पूर्ण हो जानेपर उसमें माङ्गलिक शान्तिकी स्थितिके लिये श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको आगे कर दही, अक्षत, आमके पल्लव, पुष्प तथा फलादिसे सुशोभित जलपूर्ण कलशको देकर तथा अन्य ब्राह्मणोंको सुवर्ण और वस्त्र देकर उस भवनमें गृहपतिको प्रवेश करना चाहिये। उस समय गृह्यसूत्रोंमें प्रासाद एवं वास्तुकी शान्तिके लिये जो विधि कही गयी है, उसके अनुसार हवन एवं, बलि-कर्म करे। फिर भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थोंद्वारा ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करे। तत्पश्चात् श्वेत वस्त्र धारणकर धूपादि द्रव्योंके साथ भवनमें प्रवेश करना चाहिये ॥ १२–२३ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वास्तुविद्यानुकीर्तन नामक दो सौ सत्तावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २५७ ॥

दो सौ अट्ठावनवाँ अध्याय

देव-प्रतिमाका प्रमाण-निरूपण

ऋषय ऊचुः

क्रियायोगः कथं सिध्येद् गृहस्थादिषु सर्वदा। ज्ञानयोगसहस्राद्धि कर्मयोगो विशिष्यते ॥ १ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! गृहस्थादि आश्रमोंमें सभी युगोंमें क्रियायोगकी* सिद्धि किस प्रकार सम्भव है, क्योंकि क्रिया (भक्ति) योगको हजारों ज्ञान-योगकी अपेक्षा विशिष्ट माना गया है ॥ १ ॥

* यह पाद्मीय क्रियायोग-खण्डका सारांश तथा भाग० ११ । २७ के क्रियायोगका कुछ विस्तृत रूप है। यहाँ

सूत उवाच

क्रियायोगं प्रवक्ष्यामि देवतार्चानुकीर्तनम्। भुक्तिमुक्तिप्रदं यस्मान्नान्यल्लोकेषु विद्यते ॥ २ ॥
प्रतिष्ठायां सुराणां तु देवतार्चानुकीर्तनम्। देवयज्ञोत्सवं चापि बन्धनाद् येन मुच्यते ॥ ३ ॥
विष्णोस्तावत् प्रवक्ष्यामि यादृग्रूपं प्रशस्यते। शङ्खचक्रधरं शान्तं पद्महस्तं गदाधरम् ॥ ४ ॥
छत्राकारं शिरस्तस्य कम्बुग्रीवं शुभेक्षणम्। तुङ्गनासं शुक्तिकर्णं प्रशान्तोरुभुजक्रमम् ॥ ५ ॥
क्वचिदष्टभुजं विद्याच्चतुर्भुजमथापरम्। द्विभुजश्चापि कर्तव्यो भवनेषु पुरोधसा ॥ ६ ॥
देवस्याष्टभुजस्यास्य यथास्थानं निबोधत। खड्गो गदा शरः पद्मं देयं दक्षिणतो हरेः ॥ ७ ॥
धनुश्च खेटकं चैव शङ्खचक्रे च वामतः। चतुर्भुजस्य वक्ष्यामि यथैवायुधसंस्थितिम् ॥ ८ ॥
दक्षिणेन गदा पद्मं वासुदेवस्य कारयेत्। वामतः शङ्खचक्रे च कर्तव्ये भूतिमिच्छता ॥ ९ ॥
कृष्णावतारे तु गदा वामहस्ते प्रशस्यते। यथेच्छया शङ्खचक्रे चोपरिष्टात् प्रकल्पयेत् ॥ १० ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! अब मैं देवार्चन-कथनरूप क्रियायोगका वर्णन कर रहा हूँ। यह भोग और मोक्ष—दोनोंको देनेवाला है तथा भूलोकके अतिरिक्त इसकी अन्य लोकोंमें सत्ता नहीं है। इस देवताओंकी प्रतिमा-प्रतिष्ठाके प्रसङ्ग-क्रममें प्रतिमा-निर्माण और उनके अङ्गभूत यज्ञकी विधि भी निर्दिष्ट है, जिसके अनुष्ठानसे प्राणी बन्धनसे मुक्त हो जाता है। अब भगवान् विष्णुकी जैसी प्रतिमा श्रेष्ठ मानी जाती है, उसका वर्णन कर रहा हूँ। उनकी प्रतिमाका रूप शान्त हो, हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण किये हुए हो, उसका सिर छत्रके समान गोल, गला शङ्खके समान, आँखें सुन्दर, नासिका कुछ ऊँची, कान सीपी-सदृश, भुजाएँ विशाल और ऊरु प्रशान्त—चढ़ाव-उतारवाले होने चाहिये। विष्णु भगवान्की प्रतिमा कहीं तो आठ भुजाओंवाली होती है और कहीं चार भुजाओंवाली; किंतु गृहस्थको अपने भवनमें दो भुजाओंकी (विष्णु-) प्रतिमा पुरोहितद्वारा स्थापित करानी चाहिये। अष्टभुज मूर्तिमें आयुधोंके यथास्थान क्रमको सुनिये—भगवान् श्रीहरिके दाहिनी ओरके चार हाथोंमें क्रमशः (नीचेसे ऊपरकी ओर) खड्ग, गदा, बाण और कमल तथा बायें हाथमें क्रमशः (नीचेसे ऊपर) धनुष, ढाल, शङ्ख और चक्र स्थापित करना चाहिये। अब चतुर्भुजमूर्तिके हाथोंमें आयुधकी स्थिति बतला रहा हूँ। समृद्धिकी इच्छा रखनेवालेको भगवान् वासुदेवकी प्रतिमामें दाहिनी ओरके दोनों हाथोंमें क्रमशः नीचेसे ऊपर गदा और पद्म तथा बायीं ओर क्रमशः नीचेसे ऊपर शङ्ख और चक्र रखना चाहिये। कृष्णावतारकी प्रतिमामें बायें हाथमें गदा ठीक मानी गयी है। दाहिने हाथमें स्वेच्छानुसार शङ्ख और चक्रको ऊपर-नीचे रखना चाहिये ॥ २–१० ॥

अधस्तात् पृथिवी तस्य कर्तव्या पादमध्यतः। दक्षिणे प्रणतं तद्वद् गरुत्मन्तं निवेशयेत् ॥ ११ ॥
वामतस्तु भवेल्लक्ष्मीः पद्महस्ता शुभानना। गरुत्मानग्रतो वापि संस्थाप्यो भूतिमिच्छता ॥ १२ ॥
श्रीश्च पुष्टिश्च कर्तव्ये पार्श्वयोः पद्मसंयुते। तोरणं चोपरिष्टात् तु विद्याधरसमन्वितम् ॥ १३ ॥

क्रियायोगका तात्पर्य देवपरक भगवद्भक्ति एवं देवार्चनसे है। मन्दिर, प्रतिमा-निर्माण, प्रतिष्ठादिका यह प्रकरण भारतीय धर्म-संस्कृति एवं कला-कौशलका प्राण है। इसकी विस्तृत जानकारीके लिये 'विष्णुधर्मोत्तर,' 'शिल्परत्न' 'वास्तुराजवल्लभ'—'प्रतिमा-प्रसादमण्डन' काश्यपशिल्प, 'अपराजित-पृच्छा' समराङ्गणसूत्रधार, प्रतिष्ठामहोदधि आदि सहायक ग्रन्थ भी अनुसंधेय हैं।

देवदुन्दुभिसंयुक्तं गन्धर्वमिथुनान्वितम् । पत्रवल्लीसमोपेतं सिंहव्याघ्रसमन्वितम् ॥ १४ ॥
तथा कल्पलतोपेतं स्तुवद्भिरमरेश्वरैः । एवंविधो भवेद्विष्णोस्त्रिभागेनास्य पीठिका ॥ १५ ॥
नवतालप्रमाणास्तु देवदानवकिंनराः । अतः परं प्रवक्ष्यामि मानोन्मानं विशेषतः ॥ १६ ॥
जालान्तरप्रविष्टानां भानूनां यद्रजः स्फुटम् । त्रसरेणुः स विज्ञेयो बालाग्रं तैरथाष्टभिः ॥ १७ ॥
तदष्टकेन लिख्या तु यूका लिख्याष्टकैर्मता । यवो यूकाष्टकं तद्वदष्टभिस्तैस्तदङ्गुलम् ॥ १८ ॥
स्वकीयाङ्गुलिमानेन मुखं स्याद् द्वादशाङ्गुलम् । मुखमानेन कर्तव्या सर्वावयवकल्पना ॥ १९ ॥

विष्णु भगवान्‌के दोनों चरणोंके मध्यमें नीचेकी ओर पृथ्वीकी मूर्ति और दाहिनी ओर प्रणाम करते हुए गरुड़की मूर्ति रखनी चाहिये । बायीं ओर हाथमें कमल लिये हुए सुन्दर मुखवाली लक्ष्मीकी स्थापना करनी चाहिये । कल्याणकामी पुरुष गरुड़को आगे भी स्थापित कर सकता है । प्रतिमाके दोनों ओर हाथमें कमल लिये श्री और पुष्टिकी मूर्ति भी बनानी चाहिये । प्रतिमाके ऊपर विद्याधरोंसे चित्रित गोलाकार तोरणका निर्माण करना चाहिये । देवताओंके नगाड़े बजाते हुए गन्धर्व-दम्पतिको भी वहाँ चित्रित करना चाहिये। साथमें वहीं यह लता और पत्तोंसे युक्त, कल्पलतासे समन्वित हो और व्याघ्र-सिंहोंकी भी प्रतिमासे सम्पन्न । स्तुति करते हुए बड़े-बड़े देवगण सामने खड़े हों । इस प्रकार विष्णुकी प्रतिमा हो तथा प्रतिमाकी पीठिकाका विस्तार प्रतिमामानके तृतीयांशसे निर्मित हो । देवता, दानव तथा किन्नरोंकी प्रतिमा नौ ताल* परिमाणकी होनी चाहिये । अब मैं कौन-सी प्रतिमा कितनी ऊँची, नीची, मोटी और लम्बी हो, यह बतलानेके लिये मापविवरण बतला रहा हूँ । जालीके भीतरसे सूर्यकी किरणोंके प्रविष्ट होनेपर जो उड़ता धूलिकण स्पष्ट दिखायी पड़ता है, उसे 'त्रसरेणु' कहते हैं । इन आठ त्रसरेणुओंके बराबर एक बालाग्र होता है । उससे आठगुने बड़े आकारके पदार्थकी लिख्या और आठ लिख्याकी एक यूका होती है । आठ यूकाका एक यव और आठ यवोंके मापका एक अंगुल होता है । अपनी अँगुलीके परिमाणसे बारह अंगुलका मुख होता है और मुखके परिमाणानुसार ही देवताके सभी अवयवोंकी कल्पना करनी चाहिये ॥ ११-१९ ॥

सौवर्णी राजती वापि ताम्री रत्नमयी तथा । शैली दारुमयी चापि लोहसीसमयी तथा ॥ २० ॥
रीतिकाधातुयुक्ता वा ताम्रकांस्यमयी तथा । शुभदारुमयी वापि देवतार्चा प्रशस्यते ॥ २१ ॥
अङ्गुष्ठपर्वादारभ्य वितस्तिर्यावदेव तु । गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः ॥ २२ ॥
आषोडशा तु प्रासादे कर्तव्या नाधिका ततः । मध्योत्तमकनिष्ठा तु कार्या वित्तानुसारतः ॥ २३ ॥
द्वारोच्छ्रायस्य यन्मानमष्टधा तत् तु कारयेत् । भागमेकं ततस्त्यक्त्वा परिशिष्टं तु यद् भवेत् ॥ २४ ॥
भागद्वयेन प्रतिमा त्रिभागीकृत्य तत्पुनः । पीठिका भागतः कार्या नातिनीचा न चोच्छ्रिता॥ २५ ॥
प्रतिमामुखमानेन नव भागान् प्रकल्पयेत् । चतुरङ्गुला भवेद् ग्रीवा भागेन हृदयं पुनः ॥ २६ ॥
नाभिस्तस्मादधः कार्या भागेनैकेन शोभना । निम्नत्वे विस्तरत्वे च अङ्गुलं परिकीर्तितम् ॥ २७ ॥
नाभेरधस्तथा मेढ्रं भागेनैकेन कल्पयेत् । द्विभागेनायतावूरू जानुनी चतुरङ्गुले ॥ २८ ॥
जङ्घे द्विभागे विख्याते पादौ च चतुरङ्गुलौ । चतुर्दशाङ्गुलस्तद्वन्मौलिरस्य प्रकीर्तितः ॥ २९ ॥
ऊर्ध्वमानमिदं प्रोक्तं पृथुत्वं च निबोधत । सर्वावयवमानेषु विस्तारं शृणुत द्विजाः ॥ ३० ॥

देव-प्रतिमा सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, रत्न, पत्थर, देवदारु, लोहा-सीसा, पीतल, ताँबा और काँस- मिश्रित अथवा शुभ काष्ठोंकी बनी हुई प्रशस्त मानी गयी है ।† गृहस्थोंके घरोंमें अँगूठेके एक पर्वसे

* अंगूठेसे मध्यमा अंगुलीतक फैले करतलको ताल कहते हैं ।

† भागवतीय क्रियायोगोंमें भी कहा है—'शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती ।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता ॥ (११ । २७ । १२)

लेकर एक बीते प्रमाणमात्र ही प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये; क्योंकि विद्वानोंने इससे बड़ीको गृहस्थके लिये प्रशस्त नहीं माना है। किंतु देव-मन्दिरोंमें सोलह बीतेतककी प्रतिमा प्रतिष्ठित की जा सकती है, पर उससे बड़ी वहाँ भी नहीं। इन प्रतिमाओंको अपनी आर्थिक स्थितिके अनुसार उत्तम मध्यम और कनिष्ठ कोटिकी बनानी चाहिये। मन्दिरके प्रवेशद्वारकी जो ऊँचाई हो, उसे आठ भागोंमें विभक्त कर दे। उसमें एक भाग छोड़कर शेष दो भागोंसे प्रतिमा बनवाये। फिर उन दो भागोंकी संख्याको तीन भागोंमें विभक्त कर दे। उसके एक भागके बराबर पीठिका बनाये। वह न बहुत ऊँची हो, न बहुत नीची। फिर प्रतिमाके मुखमानको नौ भागोंमें विभक्त करे। उसमें चार अंगुलमें ग्रीवा तथा एक भागके द्वारा हृदय होना चाहिये। उसके नीचेके एक भागमें सुन्दर नाभि बनानी चाहिये। वह गहराई और विस्तारमें एक अंगुलकी कही गयी है। नाभिके नीचे एक भागमें लिंग, दो भागोंमें विस्तृत ऊरु, चार अंगुलमें घुटने, दो भागसे जंघे और चार अंगुलके पैर हों। उसी प्रकार मूर्तिका सिर चौदह अंगुलका बनाना चाहिये। यह तो मूर्तिकी ऊँचाई बतायी गयी, अब उसकी मोटाई सुनिये। ब्राह्मणगण! अब क्रमशःके सभी अवयवोंका विस्तार सुनिये ॥ २०—३० ॥

चतुरङ्गुलं ललाटं स्यादूर्ध्वं नासा तथैव च। द्व्यङ्गुलस्तु हनुर्ज्ञेय ओष्ठौ द्व्यङ्गुलसम्मितौ ॥ ३१ ॥
अष्टाङ्गुलं ललाटं च तावन्मात्रे भ्रुवौ मते। अर्धाङ्गुला भ्रुवोर्लेखा मध्ये धनुरिवानता ॥ ३२ ॥
उन्नताग्रा भवेत् पार्श्वे श्लक्ष्णतीक्ष्णा प्रशस्यते। अक्षिणी द्व्यङ्गुलायामे तदर्धं चैव विस्तरे ॥ ३३ ॥
उन्नतोदरमध्ये तु रक्तान्ते शुभलक्षणे। तारकार्धविभागेन दृष्टिः स्यात् पञ्चभागिकी ॥ ३४ ॥
द्व्यङ्गुलं तु भ्रुवोर्मध्ये नासामूलमथाङ्गुलम्। नासाग्रविस्तरं तद्वत् पुटद्वयमथानतम् ॥ ३५ ॥
नासापुटविलं तद्वदर्धाङ्गुलमुदाहृतम्। कपोले द्व्यङ्गुले तद्वत् कर्णमूलाद् विनिर्गते ॥ ३६ ॥
हन्वग्रमङ्गुलं तद्वद् विस्तारो द्व्यङ्गुलो भवेत्। अर्धाङ्गुला भ्रुवो राजी प्रणालसदृशी समा ॥ ३७ ॥
अर्धाङ्गुलसमस्तद्वदुत्तरोष्ठस्तु विस्तरे। निष्पावसदृशं तद्वन्नासापुटदलं भवेत् ॥ ३८ ॥
सृक्किणी ज्योतिस्तुल्ये तु कर्णमूलात् षडङ्गुले। कर्णौ तु भ्रूसमौ ज्ञेयावूर्ध्वं तु चतुरङ्गुलौ ॥ ३९ ॥
द्व्यङ्गुलौ कर्णपार्श्वौ तु मात्रामेकां तु विस्तृतौ। कर्णयोरुपरिष्टाच्च मस्तकं द्वादशाङ्गुलम् ॥ ४० ॥

प्रतिमाके ललाटकी मोटाई चार अंगुल, नासिकाकी चार अंगुल, दाढ़ीकी दो अंगुल और ओठकी भी दो अंगुल जाननी चाहिये। यदि ललाटका विस्तार आठ अंगुल हो तो उतनेमें ही दोनों भौंहोंको भी बनानी चाहिये। भौंहोंकी रेखा आधे अंगुलकी हो। वह बीचमें धनुषाकार हो। दोनों छोरोंपर उसके अग्रभाग उठे हुए हों, बनावट चिकनी तथा सुन्दर होनी चाहिये। आँखोंकी लम्बाई दो अंगुल, चौड़ाई एक अंगुल, उनके मध्य भागमें ऊँची रक्ताभ एवं शुभ लक्षणोंसे युक्त पुतलियाँ होनी चाहिये। तारकाके आधे भागसे पाँचगुनी दृष्टि बनानी चाहिये। दोनों भौंहोंके मध्यमें दो अंगुलका अन्तर रखना चाहिये, नासिकाका मूलभाग एक अंगुलमें रहे। इसी प्रकार नीचेकी ओर झुकी हुई नासिकाके अग्रभाग एवं दोनों पुटोंको बनाना चाहिये। नासिकाके पुटोंके छिद्र आधे अंगुलके बताये गये हैं। कपोल दो अंगुलके हों, जो कानोंके मूल भागतक विस्तृत हों। ठुड्डीका अग्रभाग एक अंगुलमें तथा विस्तार दो अंगुलमें होना चाहिये। आधे अंगुलमें भौंहोंकी रेखा होनी चाहिये, जो प्रणालीके समान हो। नीचे तथा ऊपरके ओठ आधे-आधे अंगुलके हों। उसी प्रकार नासिकाके दोनों पुट निष्पाव (सेमके बीज)के तुल्य मापके बनाये जायँ। ओठके बगलमें मुखका कोना और नेत्र ज्योति दोनों समान आकारका हों और

कानके मूलसे छः अंगुल दूरपर बनावे । दोनों कानोंकी बनावट भौंहोंके समान हो और उनकी ऊँचाई चार अंगुलकी हो । कानोंके पार्श्वभाग दो अंगुलके हों और उनका विस्तार एक अंगुल मात्रका हो । दोनों कानोंके ऊपर मस्तकका विस्तार बारह अंगुलका होना चाहिये ॥ ३१–४० ॥

ललाटात् पृष्ठतोऽर्धेन प्रोक्तमष्टादशाङ्गुलम् । षट्त्रिंशदङ्गुलश्चास्य परिणाहः शिरोगतः ॥ ४१ ॥
सकेशनिचयो यस्य द्विचत्वारिंशदङ्गुलः । केशान्ताद्धनुका तद्वदङ्गुलानि तु षोडश ॥ ४२ ॥
ग्रीवामध्यपरीणाहश्चतुर्विंशतिकाङ्गुलः । अष्टाङ्गुला भवेद् ग्रीवा पृथुत्वेन प्रशस्यते ॥ ४३ ॥
स्तनग्रीवान्तरं प्रोक्तमेकतालं स्वयम्भुवा । स्तनयोरन्तरं तद्वद् द्वादशाङ्गुलमिष्यते ॥ ४४ ॥
स्तनयोर्मण्डलं तद्वद् द्व्यङ्गुलं परिकीर्तितम् । चूचुकौ मण्डलस्यान्तर्यवमात्रावुभौ स्मृतौ ॥ ४५ ॥
द्वितालं चापि विस्ताराद् वक्षःस्थलमुदाहृतम् । कक्षे षडङ्गुले प्रोक्ते बाहुमूलस्तनान्तरे ॥ ४६ ॥
चतुर्दशाङ्गुलौ पादावङ्गुष्ठौ तु त्रिरङ्गुलौ । पञ्चाङ्गुलपरीणाहमङ्गुष्ठाग्रं तथोन्नतम् ॥ ४७ ॥
अङ्गुष्ठकसमा तद्वदायामा स्यात् प्रदेशिनी । तस्याः षोडशभागेन हीयते मध्यमाङ्गुली ॥ ४८ ॥
अनामिकाष्टभागेन कनिष्ठा चापि हीयते । पर्वत्रयेण चाङ्गुल्यो गुल्फौ द्व्यङ्गुलकौ मतौ ॥ ४९ ॥
पार्ष्णिद्व्यङ्गुलमात्रस्तु कलयोच्चैः प्रकीर्त्तितः । द्विपर्वाङ्गुष्ठकः प्रोक्तः परीणाहश्च द्व्यङ्गुलः ॥ ५० ॥
प्रदेशिनीपरीणाहस्त्र्यङ्गुलः समुदाहृतः । कनिष्ठिकाष्टभागेन हीयते क्रमशो द्विजाः ॥ ५१ ॥
अङ्गुलेनोच्छ्रयः कार्यो ह्यङ्गुष्ठस्य विशेषतः । तदर्धेन तु शेषाणामङ्गुलीनां तथोच्छ्रयः ॥ ५२ ॥

ललाटके पीछेका आधा भाग अठारह अंगुलका कहा गया है और इसके मस्तकतकका विस्तार छत्तीस अंगुल होता है । केश-समूहका विस्तार बयालीस अंगुलका होता है । केशोंके अन्तर्भागसे दाढ़ीतकका विस्तार सोलह अंगुलका होता है । दोनों कंधोंका विस्तार चौबीस अंगुलका हो । ग्रीवाकी मोटाई आठ अंगुलकी उत्तम मानी गयी है । ब्रह्माने स्तन और ग्रीवाका मध्यभाग एक तालके बराबर बताया है । दोनों स्तनोंमें बारह अंगुलका अन्तर माना जाता है । स्तनोंके मण्डल दो अंगुल कहे गये हैं । दोनों चूचुक उस मण्डलके भीतर यवके बराबर बताये जाते हैं । वक्षःस्थलकी चौड़ाई दो ताल कही गयी है । दोनों कक्ष बाहु (भुजा) और स्तनके मध्यमें छः अंगुलके होने चाहिये । दोनों पैर चौदह अंगुल तथा उनके अँगूठे तीन अंगुल हों । अँगूठेका अग्रभाग उन्नत होना चाहिये और उसका विस्तार पाँच अंगुलका हो । उसी प्रकार अँगूठेके समान ही प्रदेशिनी अंगुलीको भी लम्बी बनाना चाहिये । उससे सोलहवें अंशसे अधिक मध्यमा अंगुली हो, अनामिका मध्यमा अंगुलीकी अपेक्षा आठवाँ भाग न्यून हो और अनामिकासे आठवें भागमें न्यून कनिष्ठिका हो । इन दोनों अंगुलियोंमें तीन पर्व बनाने चाहिये । पैरोंकी गाँठ दो अंगुलकी मानी गयी है । दोनों एड़ियाँ दो-दो अंगुलमें रहनी चाहिये, किंतु गाँठकी अपेक्षा इसमें एक कला अधिक रहे । अँगूठेमें दो पोर बनने चाहिये, उसका विस्तार दो अंगुलका हो । प्रदेशिनीका विस्तार तीन अंगुलका बताया गया है । द्विजगण ! कनिष्ठिका क्रमशः आठवें भागसे कम रहे । विशेषतया अँगूठेकी मोटाई एक अंगुलकी हो । शेष अंगुलियोंकी मोटाई उसके आधे भागके तुल्य रखनी चाहिये ॥ ४१–५२ ॥

जङ्घाग्रे परिणाहस्तु अङ्गुलानि चतुर्दश । जङ्घामध्ये परीणाहस्तथैवाष्टादशाङ्गुलः ॥ ५३ ॥
जानुमध्ये परीणाह एकविंशतिरङ्गुलः । जानूच्छ्रयोऽङ्गुलः प्रोक्तो मण्डलं तु त्रिरङ्गुलम् ॥ ५४ ॥
ऊरुमध्ये परीणाहो ह्यष्टाविंशतिकाङ्गुलः । एकत्रिंशोपरिष्टाच्च वृषणौ तु त्रिरङ्गुलौ ॥ ५५ ॥
द्व्यङ्गुलं च तथा मेढ्रं परीणाहः षडङ्गुलः । मणिबन्धादधो विद्यात् केशरेखास्तथैव च ॥ ५६ ॥
मणिकोशपरीणाहश्चतुरङ्गुल इष्यते । विस्तरेण भवेत् तद्वत् कटिरष्टादशाङ्गुला ॥ ५७ ॥

द्वाविंशति तथा स्त्रीणां स्तनौ च द्वादशाङ्गुलौ । नाभिमध्यपरीणाहो द्विचत्वारिंशदङ्गुलः ॥ ५८ ॥
पुरुषे पञ्चपञ्चाशत् कट्यां चैव तु वेष्टनम् । कक्षयोरुपरिष्टात् तु स्कन्धौ प्रोक्तौ षडङ्गुलौ ॥ ५९ ॥
अष्टाङ्गुलां तु विस्तारे ग्रीवां चैव विनिर्दिशेत् । परीणाहे तथा ग्रीवां कला द्वादश निर्दिशेत् ॥ ६० ॥

जाँघके अगेके भाग चौदह अंगुल और मध्यभाग अठारह अंगुल रहे । घुटनेका मध्यभाग इक्कीस अंगुलका हो । घुटनेकी ऊँचाई एक अंगुल तथा मण्डल तीन अंगुल विस्तृत हो । ऊरुओंका मध्यभाग अट्ठाईस अंगुल हो । इसके एकतीस अंगुल ऊपर अण्डकोश तीन अंगुल और लिंग दो अंगुल हो तथा उसका विस्तार छः अंगुल हो । मणिबन्धसे नीचे केशोंकी रेखा रखनी चाहिये । मणिकोशका विस्तार चार अंगुलका हो । कटिप्रदेशका विस्तार अठारह अंगुल हो । स्त्रियोंकी मूर्तिमें कटिका विस्तार बाईस अंगुलका तथा स्तनोंका बारह अंगुल होना चाहिये । नाभिका मध्यभाग बयालीस अंगुलका होना चाहिये । पुरुषके कटिप्रदेश पचपन अंगुल तथा दोनों कक्षोंके ऊपर छः अंगुलके स्कन्धोंके बनानेकी विधि है । आठ अंगुलके विस्तारमें ग्रीवाका निर्माण कहा गया है और इसकी लम्बाई बारह कलाकी होनी चाहिये ॥ ५३–६० ॥

आयामो भुजयोस्तद्वद् द्विचत्वारिंशदङ्गुलः । कार्यं तु बाहुशिखरं प्रमाणे षोडशाङ्गुलम् ॥ ६१ ॥
ऊर्ध्वं यद्बाहुपर्यन्तं विद्यादष्टादशाङ्गुलम् । तथैकाङ्गुलहीनं तु द्वितीयं पर्व उच्यते ॥ ६२ ॥
बाहुमध्ये परीणाहो भवेदष्टादशाङ्गुलः । षोडशोक्तः प्रबाहुस्तु षट्कलोऽग्रकरो मतः ॥ ६३ ॥
सप्ताङ्गुलं करतलं पञ्च मध्याङ्गुली मता । अनामिका मध्यमायाः सप्तभागेन हीयते ॥ ६४ ॥
तस्यास्तु पञ्चभागेन कनिष्ठा परिहीयते । मध्यमायास्तु हीना वै पञ्चभागेन तर्जनी ॥ ६५ ॥
अङ्गुष्ठस्तर्जनीमूलादधः प्रोक्तस्तु तत्समः । अङ्गुष्ठपरिणाहस्तु विज्ञेयश्चतुरङ्गुलः ॥ ६६ ॥
शेषाणामङ्गुलीनां तु भागो भागेन हीयते । मध्यमापर्वमध्यं तु अङ्गुलद्वयमायतम् ॥ ६७ ॥
यवो यवेन सर्वासां तस्यास्तस्याः प्रहीयते । अङ्गुष्ठपर्वमध्यं तु तर्जन्या सदृशं भवेत् ॥ ६८ ॥
यवद्वयाधिकं तद्वदग्रपर्व उदाहृतम् । पर्वार्धे तु नखान् विद्यादङ्गुलीषु समन्ततः ॥ ६९ ॥
स्निग्धं श्लक्ष्णं प्रकुर्वीत ईषद्रक्तं तथाग्रतः । निम्नपृष्ठं भवेन्मध्ये पार्श्वतः कलयोच्छ्रितम् ॥ ७० ॥
तथैव केशवल्लीयं स्कन्धोपरि दशाङ्गुला । स्त्रियः कार्यास्तु तन्वङ्ग्यः स्तनोरुजघनाधिकाः ॥ ७१ ॥
चतुर्दशाङ्गुलायाममुदरं तासु निर्दिशेत् । नानाभरणसम्पन्नाः किञ्चिच्छ्लक्ष्णभुजास्ततः ॥ ७२ ॥
किञ्चिद् दीर्घं भवेद् वक्त्रमलकावलिरुत्तमा । नासा ग्रीवा ललाटं च सार्धमात्रं त्रिरङ्गुलम् ॥ ७३ ॥
अध्यर्धाङ्गुलविस्तारः शस्यतेऽधरपल्लवः ।
अधिकं नेत्रयुग्मं तु चतुर्भागेन निर्दिशेत् । ग्रीवावलिश्च कर्तव्या किञ्चिदर्धाङ्गुलोच्छ्रयः ॥ ७४ ॥
एवं नारीषु सर्वासु देवानां प्रतिमासु च । नवतालमिदं प्रोक्तं लक्षणं पापनाशनम् ॥ ७५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवार्चानुकीर्तने प्रमाणानुकीर्तनं नामाष्टपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५८ ॥

दोनों भुजाओंकी लम्बाई बयालीस अंगुल हो । बाहुके मूलभाग सोलह अंगुलके होने चाहिये । बाहुके ऊपरी अंशतक अठारह अंगुल होना चाहिये । दूसरा पर्व (पोर) इसकी अपेक्षा एक अंगुल कम कहा गया है । बाहुके मध्यभागका विस्तार अठारह अंगुल तथा नीचेका हाथ (करतलके पूर्वतक) सोलह अंगुलका कहा गया है । हाथके अग्रभागका मान छः कलाका माना गया है । हथेलीका विस्तार सात अंगुल हो और उसमें पाँच अंगुलियाँ बनी हों । अनामिका अंगुली मध्यमाकी अपेक्षा सप्तमांश कम रहती है । कनिष्ठा उससे भी पञ्चमांश न्यून तथा मध्यमाके पाँचवें भागसे न्यून तर्जनी होनी चाहिये । अँगूठा तर्जनीके उद्गमसे नीचा

होना चाहिये, किंतु लम्बाईमें उतना ही होना चाहिये। अँगूठेका विस्तार चार अंगुलका जानना चाहिये। शेष अंगुलियोंके विस्तार क्रमशः एक-एक भागसे न्यून होते हैं। मध्यमा अंगुलीके पोरोंके मध्यभागमें दो अंगुलका अन्तर रहना चाहिये। इसी प्रकार अन्य अंगुलियोंके पोरोंमें एक-एक यवकी कमी होती जाती है। अंगूठेके पोरोंका मध्यभाग तर्जनीके समान ही रहना चाहिये। अगला पोर दो यवसे अधिक कहा गया है। अंगुलियोंके पर्वार्धमें नखोंको चिकना, सुन्दर तथा आगेकी ओर कुछ लालिमायुक्त बनाना चाहिये। मयध्भागमें पीछेकी ओर कुछ नीचा तथा बगलमें अंशमात्र ऊँचा बनावे। उसी प्रकार कंधोंके ऊपर दस अंगुलमें केशोंकी बल्लीका निर्माण करना चाहिये। स्त्री-प्रतिमाओंको कुछ पतली तथा उनके स्तन, ऊरु एवं जाँघोंको स्थूल बनाना चाहिये। उनके उदरप्रदेशकी लम्बाई चौदह अंगुल तथा वे अनेक आभूषणोंसे विभूषित हों और उनकी भुजाओंको कुछ मृदु एवं मनोहर आकृतियुक्त बनाना चाहिये। मुखाकृति अपेक्षाकृत लम्बी हो। अलकावलि उत्तम ढंगसे रचित हो। नासिका, ग्रीवा और ललाट साढ़े तीन अंगुल होने चाहिये। अधर-पल्लवोंका विस्तार आधे अंगुलका प्रशस्त माना गया है। दोनों नेत्र अधर-पल्लवोंसे चार गुने अधिक होने चाहिये। ग्रीवाकी वलि आधे अंगुलकी ऊँची बनानी चाहिये। इस प्रकार सभी देवताओंकी प्रतिमाओं एवं स्त्री-प्रतिमाओंके निर्माणमें नौ तालका परिमाण बतलाया गया, जो समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला कहा गया है॥ ६१—७५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें देवपूजा-प्रसंगमें प्रतिमा-प्रमाण-कीर्तन नामक दो सौ अट्ठावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २५८॥

दो सौ उनसठवाँ अध्याय

प्रतिमाओंके लक्षण, मान, आकार आदिका कथन

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि देवाकारान् विशेषतः। दशतालः स्मृतो रामो बलिर्वैरोचनिस्तथा॥ १॥
वाराहो नारसिंहश्च सप्ततालस्तु वामनः। मत्स्यकूर्मौ च निर्दिष्टौ यथाशोभं स्वयम्भुवा॥ २॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि रुद्राद्याकारमुत्तमम्। स पीनोरुभुजस्कन्धस्तप्तकाञ्चनसप्रभः॥ ३॥
शुक्लोऽर्करश्मिसंघातश्चन्द्राङ्कितजटो विभुः। जटामुकुटधारी च द्व्यष्टवर्षाकृतिश्च सः॥ ४॥
बाहू वारणहस्ताभौ वृत्तजङ्घोरुमण्डलः। ऊर्ध्वकेशश्च कर्तव्यो दीर्घायतविलोचनः॥ ५॥
व्याघ्रचर्मपरीधानः कटिसूत्रत्रयान्वितः। हारकेयूरसम्पन्नो भुजङ्गाभरणस्तथा॥ ६॥
बाहवश्चापि कर्तव्या नानाभरणभूषिताः। पीनोरुगण्डफलकः कुण्डलाभ्यामलङ्कृतः॥ ७॥
आजानुलम्बबाहुश्च सौम्यमूर्तिः सुशोभनः। खेटकं वामहस्ते तु खड्गं चैव तु दक्षिणे॥ ८॥
शक्तिं दण्डं त्रिशूलं च दक्षिणेषु निवेशयेत्। कपालं वामपार्श्वे तु नागं खट्वाङ्गमेव च॥ ९॥
एकश्च वरदो हस्तस्तथाक्षवलयोऽपरः।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इसके बाद मैं देवताओंकी मूर्तियोंके आकारके विषयमें विशेषरूपसे बतला रहा हूँ। इस विषयमें ब्रह्माने बताया है कि राम*, विरोचनके पुत्र बलि, वाराह और नृसिंहकी

* 'राम' शब्दसे यहाँ दशरथनन्दन राम, परशुराम तथा बलराम तीनों ही ग्राह्य हैं।

मूर्तियोंकी ऊँचाई दस ताल* होनी चाहिये। वामनकी प्रतिमा सात ताल की हो तथा मत्स्य और कूर्मकी प्रतिमाएँ जितनेमें सुन्दर दीख सकें, उसी परिमाणकी बनानी चाहिये। अब मैं शिव आदिकी मूर्तियोंके आकारका वर्णन कर रहा हूँ। रुद्रकी मूर्ति तपाये हुए सुवर्णकी भाँति कान्तिमती तथा स्थूल ऊरुओं, भुजाओं और स्कन्धोंसे युक्त होनी चाहिये। उनका वर्ण सूर्यकी किरणोंके समान श्वेत और जटा चन्द्रमासे विभूषित हो। वे जटा-मुकुटधारी हों तथा उनकी अवस्था सोलह वर्षकी होनी चाहिये। उनकी दोनों भुजाएँ हाथीके शुण्डादण्डकी तरह तथा जंघा और ऊरुमण्डल गोलाकार हों। उनके केश ऊपरकी ओर उठे हुए तथा नेत्र दीर्घ एवं चौड़े बनाये जाने चाहिये। उनके वस्त्रके स्थानपर व्याघ्रचर्म तथा कमरमें तीन सूत्रोंकी मेखला बनायी जाय। उन्हें हार और केयूरसे सुशोभित तथा सर्पोंके आभूषणोंसे अलंकृत करना चाहिये। उनकी भुजाओंको विविध प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित तथा उभरे हुए कपोलोंको दो कुण्डलोंसे अलंकृत करना चाहिये। उनकी भुजाएँ घुटनेतक लम्बी, मूर्ति सौम्य, परम सुन्दर, बायें हाथमें ढाल, दाहिने हाथमें तलवार, दाहिनी ओर शक्ति, दण्ड और त्रिशूल तथा बायीं ओरके हाथोंमें कपाल, नाग और खट्वाङ्गको रखना चाहिये। एक हाथ वरद-मुद्रासे सुशोभित और दूसरा हाथ रुद्राक्षकी माला धारण किये हुए हो ॥ १–९½ ॥

वैशाखस्थानकं कृत्वा नृत्याभिनयसंस्थितः ॥ १० ॥
नृत्यन् दशभुजः कार्यो गजचर्मधरस्तथा। तथा त्रिपुरदाहे च बाहवः षोडशैव तु ॥ ११ ॥
शङ्खं चक्रं गदा शार्ङ्गं घण्टा तत्राधिका भवेत्। तथा धनुः पिनाकश्च शरो विष्णुमयस्तथा ॥ १२ ॥
चतुर्भुजोऽष्टबाहुर्वा ज्ञानयोगेश्वरो मतः। तीक्ष्णनासाग्रदशनः करालवदनो महान् ॥ १३ ॥
भैरवः शस्यते लोके प्रत्यायतनसंस्थितः। न मूलायतने कार्यो भैरवस्तु भयंकरः ॥ १४ ॥
नारसिंहो वराहो वा तथान्येऽपि भयङ्कराः। नाधिकाङ्गा न हीनाङ्गाः कर्तव्या देवताः क्वचित् ॥ १५ ॥
स्वामिनं घातयेन्न्यूना करालवदना तथा। अधिका शिल्पिनं हन्यात् कृशा चैवार्थनाशिनी ॥ १६ ॥
कृशोदरी तु दुर्भिक्षं निर्मांसा धननाशिनी। वक्रनासा तु दुःखाय संक्षिप्ताङ्गी भयङ्करी ॥ १७ ॥
चिपिटा दुःखशोकाय अनेत्रा नेत्रनाशिनी। दुःखदा हीनवक्त्रा तु पाणिपादकृशा तथा ॥ १८ ॥
हीनाङ्गा हीनजङ्घा च भ्रमोन्मादकरी नृणाम्। शुष्कवक्त्रा तु राजानं कटिहीना च या भवेत् ॥ १९ ॥
पाणिपादविहीना या जायते मारको महान्। जङ्घाजानुविहीना च शत्रुकल्याणकारिणी ॥ २० ॥

दस भुजाओंवाली शिवकी नटराज-मूर्तिको विशाख† स्थानयुक्त बनायी जानी चाहिये। वह नाचती हुई तथा गजचर्म धारण किये हुए हो। त्रिपुरान्तक प्रतिमामें सोलह भुजाएँ बनायी जानी चाहिये। उस समय उनके हाथमें शङ्ख, चक्र, गदा, सींग, घण्टा, पिनाक, धनुष, त्रिशूल और विष्णुमय शर—ये आठ वस्तुएँ अधिक रहेंगी। शिवकी ज्ञानयोगेश्वर प्रतिमामें चार या आठ भुजाएँ बनायी जाती हैं। भैरव-मूर्ति तीक्ष्ण दाँत तथा नुकीली नासिकासे युक्त होती है। उनका मुख महान् भयंकर होता है। ऐसी मूर्तिको प्रत्यायतन अर्थात् मुख्य मन्दिरके सामनेके मन्दिर या बरामदेमें स्थापित करना शुभदायक होता है। मुख्य मन्दिरमें भैरवकी स्थापना नहीं करनी चाहिये; क्योंकि ये भयकारी देवता हैं। इसी प्रकार नृसिंह, वराह तथा अन्य

* दस तालका तात्पर्य प्रायः पाँच हाथ या साढ़े सात फीटकी ऊँचाईसे है।

† विशाखस्थान नृत्य या युद्धमें खड़े होनेकी वह मुद्रा है, जिसमें दोनों पैरोंके बीचमें एक हाथ जगह खाली रहती है।

भयंकर देवताओंके लिये भी करना चाहिये। देव-प्रतिमाओंको कहीं भी हीन अङ्गोंवाली अथवा अधिक अङ्गोंवाली नहीं बनानी चाहिये। न्यून अङ्ग तथा भयानक मुखवाली प्रतिमा स्वामीका विनाश करती है, अधिक अङ्गोंवाली प्रतिमा शिल्पकारका हनन करती है और दुर्बल प्रतिमा धनका नाश करती है। दुबले उदरवाली प्रतिमा दुर्भिक्षप्रदा, कंकाल-सरीखी धन-नाशिनी, टेढ़ी नासिकावाली दुःखदायिनी, सूक्ष्माङ्गी भय पहुँचानेवाली, चिपटी दुःख और शोक प्रदान करनेवाली, नेत्रहीना नेत्रकी विनाशिका, मुखविहीना दुःखदायिनी तथा दुर्बल हाथ-पैरवाली या अन्य किन्हीं अङ्गोंसे हीन अथवा विशेषकर जंघेसे हीन प्रतिमा मनुष्योंके लिये भ्रम और उन्माद उत्पन्न करनेवाली कही गयी है। सूखे मुखवाली तथा कटिभागसे हीन प्रतिमा राजाको कष्ट देनेवाली कही गयी है। हाथ-पाँवसे विहीन प्रतिमा महामारीका भय उत्पन्न करनेवाली तथा जंघा और घुटनेसे विहीन शत्रुका कल्याण करनेवाली कही गयी है॥ १०—२०॥

पुत्रमित्रविनाशाय हीनवक्षःस्थला तु या। सम्पूर्णावयवा या तु आयुर्लक्ष्मीप्रदा सदा॥ २१॥
एवं लक्षणमासाद्य कर्तव्यः परमेश्वरः। स्तूयमानः सुरैः सर्वैः समन्ताद् दर्शयेद् भवम्॥ २२॥
शक्रेण नन्दिना चैव महाकालेन शंकरम्। प्रणता लोकपालास्तु पार्श्वे तु गणनायकाः॥ २३॥
नृत्यद्भृङ्गिरिटिश्चैव भूतवेतालसंवृताः। सर्वे हृष्टास्तु कर्तव्याः स्तुवन्तः परमेश्वरम्॥ २४॥
गन्धर्वविद्याधरकिन्नराणामथाप्सरोगुह्यकनायकानाम्।
गणैरनेकैः शतशो महेन्द्रैर्मुनिप्रवीरैरपि नम्यमानम्॥ २५॥
धृताक्षसूत्रैः शतशः प्रवालपुष्पोपहारप्रचयं ददद्भिः।
संस्तूयमानं भगवन्तमीड्यं नेत्रत्रयेणामरमर्त्यपूज्यम्॥ २६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रतिमालक्षणे एकोनषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २५९॥

जो वक्षःस्थलसे विहीन होती है, वह पुत्रों और मित्रोंकी विनाशिका तथा सम्पूर्ण अङ्गोंसे परिपूर्ण प्रतिमा सर्वदा आयु और लक्ष्मी प्रदान करनेवाली कही गयी है। इस प्रकारके लक्षणोंसे युक्त भगवान् शंकरकी प्रतिमा निर्मित करानी चाहिये। उनकी प्रतिमाके चारों ओर सभी देवगणोंको स्तुति करते हुए प्रदर्शित करना चाहिये। शंकरकी मूर्तिको इन्द्र, नन्दीश्वर एवं महाकालसे युक्त बनाना चाहिये। उनके पार्श्व-भागमें विनम्र भावसे स्थित लोकपालों और गणेश्वरोंको दिखलाना चाहिये। भृंगी और भूत-वेतालोंकी मूर्तियाँ उनके बगलमें नाचती-गाती हुई बनायी जानी चाहिये, जो सभी हर्षपूर्वक परमेश्वर शिवकी स्तुतिमें लीन रहें। रुद्राक्षकी माला धारण करनेवाले, प्रवाल (मूँगे) आदिकी माला तथा पुष्पादिरूप उपहारोंको समर्पित करनेवाले गन्धर्व, विद्याधर, किंन्नर, अप्सरा और गुह्यकोंके अधीश्वरोंके अनेकों गणों तथा इन्द्र आदि सैकड़ों देवताओं और मुनिवरोंद्वारा नमस्कार एवं स्तुति किये जाते हुए तथा देवताओं और मनुष्योंके लिये पूजनीय त्रिनेत्रधारी स्तवनीय भगवान् शंकरकी प्रतिमा बनायी जानी चाहिये॥ २१—२६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें प्रतिमालक्षण नामक दो सौ उनसठवाँ
अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २५९॥

दो सौ साठवाँ अध्याय

विविध देवताओंकी प्रतिमाओंका वर्णन

सूत उवाच

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि अर्धनारीश्वरं परम्। अर्धेन देवदेवस्य नारीरूपं सुशोभनम्॥ १॥
ईशार्धे तु जटाभागो बालेन्दुकलया युतः। उमार्धे चापि दातव्यौ सीमन्ततिलकावुभौ॥ २॥
वासुकिं दक्षिणे कर्णे वामे कुण्डलमादिशेत्।
बालिका चोपरिष्टात् तु कपालं दक्षिणे करे। त्रिशूलं वापि कर्तव्यं देवदेवस्य शूलिनः॥ ३॥
वामतो दर्पणं दद्यादुत्पलं तु विशेषतः। वामबाहुश्च कर्तव्यः केयूरवलयान्वितः॥ ४॥
उपवीतं च कर्तव्यं मणिमुक्तामयं तथा॥ ५॥
स्तनभारं तथार्धे तु वामे पीतं प्रकल्पयेत्। परार्धमुज्ज्वलं कुर्याच्छ्रोण्यर्धं तु तथैव च॥ ६॥
लिङ्गार्धमूर्ध्वगं कुर्याद् व्यालाजिनकृताम्बरम्। वामे लम्बपरीधानं कटिसूत्रत्रयान्वितम्॥ ७॥
नानारत्नसमोपेतं दक्षिणे भुजगान्वितम्। देवस्य दक्षिणं पादं पद्मोपरि सुसंस्थितम्॥ ८॥
किञ्चिदूर्ध्वं तथा वामं भूषितं नूपुरेण तु। रत्नैर्विभूषितान् कुर्यादङ्गुलीष्वङ्गुलीयकान्॥ ९॥
सालक्तकं तथा पादं पार्वत्या दर्शयेत् सदा। अर्धनारीश्वरस्येदं रूपमस्मिन्नुदाहृतम्॥ १०॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अब मैं भगवान् शिवके अर्धनारीश्वर रूपका वर्णन कर रहा हूँ। इसमें देवाधिदेव शंकरकी बायीं ओर आधे भागमें अत्यन्त सुन्दर स्त्रीका रूप होता है तथा अर्धभागमें दाहिनी ओर पुरुषरूप। पुरुष-भागमें प्रतिमाको जटाजूट तथा बालचन्द्रकी कलासे युक्तकर उमाके अर्धभागमें मस्तकपर सीमन्त (माँग)में सिन्दूर और ललाटपर तिलक निर्मित करे। दाहिने कानमें वासुकि नाग और बायें कानमें कुण्डलकी रचना की जानी चाहिये। वहीं ऊपरकी ओर केशोंके आभूषण तथा कानमें बाली बनानी चाहिये। देवदेवेश्वर शिवके दाहिने हाथमें कपाल या त्रिशूल तथा बायें हाथमें दर्पण और कमल बनाये। विशेषतया बायें बाहुको बाजूबंद और कङ्कणसे युक्त बनाना चाहिये और दाहिनी ओरके भागमें मणियों और मोतियोंका यज्ञोपवीत बनाना चाहिये। प्रतिमाके बायें भागकी ओर स्तन तथा दाहिना भाग पीले वर्णका बनाये। ऊपरका आधा भाग उज्ज्वल हो, नितम्बका आधा भाग श्वेतवर्णका होना चाहिये। लिंगसे ऊपरका भाग सिंहके चर्मसे आवृत हो। बायें भागमें नाना प्रकारके रत्नोंसे बनी हुई तीन लड़ियोंवाली करधनी और साड़ी पहनानी चाहिये। दाहिना भाग सर्पोंसे युक्त हो। शिवजीका दाहिना पैर कमलके ऊपर स्थापित हो तथा नूपुरसे विभूषित बायाँ पैर उससे कुछ ऊपरकी ओर हो। उसकी अंगुलियोंको रत्ननिर्मित अँगूठियोंसे विभूषित करे। पार्वतीके चरण सर्वदा महावरसे युक्त प्रदर्शित किये जायँ। इस प्रकार इस प्रसङ्गमें मैंने अर्धनारीश्वरके रूपका वर्णन किया॥

उमामहेश्वरस्यापि लक्षणं शृणुत द्विजाः। संस्थानं तु तयोर्वक्ष्ये लीलाललितविभ्रमम्॥ ११॥
चतुर्भुजं द्विबाहुं वा जटाभारेन्दुभूषितम्। लोचनत्रयसंयुक्तमुमैकस्कन्धपाणिनम्॥ १२॥
दक्षिणेनोत्पलं शूलं वामे कुचभरे करम्। द्वीपिचर्मपरीधानं नानारत्नोपशोभितम्॥ १३॥
सुप्रतिष्ठं सुवेषं च तथार्धेन्दुकृताननम्। वामे तु संस्थिता देवी तस्योरौ बाहुगूहिता॥ १४॥
शिरोभूषणसंयुक्तैरलकैर्ललितानना। सबालिका कर्णवती ललाटतिलकोज्ज्वला॥ १५॥
मणिकुण्डलसंयुक्ता कर्णिकाभरणा क्वचित्। हारकेयूरबहुला हरवक्त्रावलोकिनी॥ १६॥
वामांसं देवदेवस्य स्पृशन्ती लीलया ततः। दक्षिणं तु बहिः कृत्वा बाहुं दक्षिणतस्तथा॥ १७॥

स्कन्धे वा दक्षिणे कुक्षौ स्पृशन्त्यङ्गुलिजैः क्वचित् । वामे तु दर्पणं दद्यादुत्पलं वा सुशोभनम् ॥ १८ ॥
कटिसूत्रत्रयं चैव नितम्बे स्यात् प्रलम्बकम् । जया च विजया चैव कार्तिकेयविनायकौ ॥ १९ ॥
पार्श्वयोर्दर्शयेत् तत्र तोरणे गणगुह्यकान् । माला विद्याधरांस्तद्वद्वीणावानप्सरोगणः ॥ २० ॥
एतद् रूपमुमेशस्य कर्तव्यं भूतिमिच्छता ।

ब्राह्मणो ! अब आपलोग उमामहेश्वर-मूर्तिके लक्षण सुनिये । मैं उन दोनोंकी स्थितिका वर्णन कर रहा हूँ। उमामहेश्वरकी प्रतिमा मनोहर लीलाओंसे युक्त हो । उसे जटाओंके भार और चन्द्रमासे विभूषित दो या चार बाहुओं तथा तीन नेत्रोंसे युक्त बनाना चाहिये। उसमें भगवान् शिवका एक हाथ उमाके कंधेपर विराजमान होना चाहिये । मूर्तिके दाहिने हाथमें कमल या शूल हो, बायाँ हाथ स्तनपर न्यस्त होना चाहिये। उसे विविध प्रकारके रत्नोंसे विभूषित, व्याघ्रचर्मसे युक्त, सुन्दर वेषोंसे सुसज्जित, मुखमण्डलको अर्धचन्द्रमासे विभूषित तथा उचित रूपसे प्रतिष्ठित करना चाहिये । उसके बायें भागमें देवीकी मूर्ति होगी, जिसके दोनों ऊरुभाग बाहुओंसे छिपे रहेंगे । सिरके आभूषणों तथा अलकावलियोंद्वारा मुखभाग ललित हो और बालियोंसे कान तथा तिलकसे ललाट शोभायमान हो रहा हो । कहीं-कहीं कानोंको अलंकृत करनेके लिये मणिनिर्मित कुण्डल पहनाये जाते हैं । उसे हार और केयूरसे सुसज्जित कर शिवजीके मुखका अवलोकन करनेवाली बनावे । वे लीलापूर्वक देवदेव शंकरके बायें कंधेका स्पर्श कर रही हों तथा उनका दाहिना हाथ दाहिने भागसे बाहरकी ओर बना हो । या किसी-किसी प्रतिमामें दाहिने कंधे अथवा कुक्षिभागमें नखोंसे स्पर्श कर रही हों, बायें हाथमें दर्पण अथवा सुन्दर कमल रहना चाहिये । नितम्बभागपर तीन लड़ियोंवाला कटिसूत्र लटकता रहना चाहिये । पार्वतीके दोनों ओर जया, विजया, स्वामि-कार्तिकेय और गणेशको तथा तोरणद्वारपर गुह्यक गणोंको प्रदर्शित करना चाहिये । उसी प्रकार वहाँ माला, विद्याधर और वीणासे सुशोभित अप्सराओंको बनाना चाहिये । समृद्धिकामीको उमापति शिवकी प्रतिमा इस प्रकारकी बनवानी चाहिये ॥ ११-२०½ ॥

शिवनारायणं वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २१ ॥
वामार्धे माधवं विद्याद् दक्षिणे शूलपाणिनम् । बाहुद्वयं च कृष्णस्य मणिकेयूरभूषितम् ॥ २२ ॥
शङ्खचक्रधरं शान्तमारक्ताङ्गुलिविभ्रमम् । चक्रस्थाने गदां वापि पाणौ दद्यादधस्तले ॥ २३ ॥
शङ्खं चैवोत्तरे दद्यात् कट्यर्धे भूषणोज्ज्वलम् । पीतवस्त्रपरीधानं चरणं मणिभूषणम् ॥ २४ ॥
दक्षिणार्धे जटाभारमर्धेन्दुकृतभूषणम् । भुजङ्गहारवलयं वरदं दक्षिणं करम् ॥ २५ ॥
द्वितीयं चापि कुर्वीत त्रिशूलवरधारिणम् । व्यालोपवीतसंयुक्तं कट्यर्धे कृत्तिवाससम् ॥ २६ ॥
मणिरत्नैश्च संयुक्तं पादं नागविभूषितम् । शिवनारायणस्यैवं कल्पयेद् रूपमुत्तमम् ॥ २७ ॥
महावराहं वक्ष्यामि पद्महस्तं गदाधरम् । तीक्ष्णदंष्ट्राग्रघोणास्यं मेदिनी वामकूर्परम् ॥ २८ ॥
दंष्ट्राग्रेणोद्धृतां दान्तां धरणीमुत्पलान्विताम् । विस्मयोत्फुल्लवदनामुपरिष्टात् प्रकल्पयेत् ॥ २९ ॥
दक्षिणं कटिसंस्थं तु करं तस्याः प्रकल्पयेत् । कूर्मोपरि तथा पादमेकं नागेन्द्रमूर्धनि ॥ ३० ॥
संस्तूयमानं लोकेशैः समन्तात्परिकल्पयेत् ।

अब मैं सभी पापोंके विनाशक शिवनारायणकी प्रतिमाकी विधि बता रहा हूँ । इस प्रतिमाकी बायीं ओर आधे भागमें भगवान् विष्णु तथा दाहिनी ओर आधे भागमें शूलपाणि शिवको बनाना चाहिये । कृष्णकी दोनों भुजाएँ मणिनिर्मित केयूरसे विभूषित होनी चाहिये । दोनों भुजाओंमें शङ्ख और चक्र धारण किये हों, शान्त-रूप हों तथा मनोहर अंगुलियाँ लाल वर्णकी हों। हाथके निचले भागमें चक्रके स्थानमें गदा भी देनी चाहिये । ऊपरी

भागमें शङ्ख, कटिभागमें उज्ज्वल आभूषण और पीताम्बर धारण किये हुए हों तथा चरण मणिनिर्मित नूपुरोंसे विभूषित हों। इसका दाहिना आधा भाग जटाभार तथा अर्धचन्द्रसे विभूषित होना चाहिये। दाहिने हाथको वरद-मुद्रासे युक्त तथा सर्पोंके हार और कङ्कणसे सुशोभित तथा दूसरे हाथको त्रिशूलसे विभूषित बनाना चाहिये। उसे सर्पके यज्ञोपवीतसे युक्त और उसके कटिप्रदेशको गजचर्मसे आच्छादित कर दे। चरण मणि और रत्नोंसे अलंकृत तथा नागसे विभूषित हों। इस प्रकार शिवनारायणके उत्तम स्वरूपकी कल्पना करनी चाहिये। अब मैं महावराहका वर्णन कर रहा हूँ। उनके हाथोंमें पद्म और गदा हों, उनके दाढ़ोंके अर्धभाग तीक्ष्ण हों, थूथुनवाला मुख हो, बायीं केहुनीपर पृथ्वी हो, वह पृथ्वी दाढ़के अग्रभागपर रखी हुई कमलयुक्त और शान्त हो तथा उसका मुख विस्मयसे उत्फुल्ल हो, ऐसी मूर्तिको ऊपरकी ओर बनाना चाहिये। उस मूर्तिका दाहिना हाथ कटिप्रदेशपर हो। उनका एक पैर शेषनागके मस्तकपर और दूसरा कूर्मपर स्थित हो तथा लोकपालगण चारों ओरसे उनकी स्तुति कर रहे हों, ऐसी मूर्ति बनानी चाहिये ॥ २१-३०½ ॥

नारसिंहं तु कर्तव्यं भुजाष्टकसमन्वितम् ॥ ३१ ॥
रौद्रं सिंहासनं तद्वद् विदारितमुखेक्षणम्। स्तब्धपीनसटाकर्णं दारयन्तं दितेः सुतम् ॥ ३२ ॥
विनिर्गतान्त्रजालं च दानवं परिकल्पयेत्। वमन्तं रुधिरं घोरं भ्रुकुटीवदनेक्षणम् ॥ ३३ ॥
युध्यमानश्च कर्तव्यः क्वचित् करणबन्धनैः। परिश्रान्तेन दैत्येन तर्ज्यमानो मुहुर्मुहुः ॥ ३४ ॥
दैत्यं प्रदर्शयेत् तत्र खड्गखेटकधारिणम्। स्तूयमानं तथा विष्णुं दर्शयेदमराधिपैः ॥ ३५ ॥
तथा त्रिविक्रमं वक्ष्ये ब्रह्माण्डक्रमणोल्वणम्। पादपार्श्वे तथा बाहुमुपरिष्टात् प्रकल्पयेत् ॥ ३६ ॥
अधस्ताद् वामनं तद्वत् कल्पयेत् सकमण्डलुम्। दक्षिणे छत्रिकां दद्यान्मुखं दीनं प्रकल्पयेत् ॥ ३७ ॥
भृङ्गारधारिणं तद्वद् बलिं तस्य च पार्श्वतः। बन्धनं चास्य कुर्वन्तं गरुडं तस्य दर्शयेत् ॥ ३८ ॥
मत्स्यरूपं तथा मत्स्यं कूर्मं कूर्माकृतिं न्यसेत्। एवंरूपस्तु भगवान् कार्यो नारायणो हरिः ॥ ३९ ॥

भगवान् नृसिंहकी प्रतिमा आठ भुजाओंसे युक्त बनायी जानी चाहिये। उसी प्रकार उनका सिंहासन भी भयंकर हो, मुख और नेत्र फैले हुए हों, गरदनके लम्बे बाल कानोंतक बिखरे हों तथा वे नखसे दिति-पुत्र हिरण्यकशिपुको फाड़ रहे हों। जिसकी आँतें बाहर निकल गयी हों, मुखसे रुधिर गिर रहा हो, भृकुटी, मुख और नेत्र विकराल हों, ऐसे दानवराज हिरण्यकशिपुकी मूर्ति बनानी चाहिये। कहीं नृसिंह-प्रतिमा युद्धके उपकरणोंसे युक्त दैत्योंसे युद्ध करती हुई बनायी जाती है और कहीं थके हुए दैत्यसे बारंबार धमकायी जाती हुई बनानी चाहिये। वहाँ दैत्यको तलवार और ढाल धारण किये हुए प्रदर्शित करना चाहिये तथा देवेश्वरोंद्वारा स्तुति किये जाते हुए विष्णुको दिखाना चाहिये। अब मैं वामनका वर्णन कर रहा हूँ। वे ब्रह्माण्डको नापनेके लिये तत्पर दीखते हों। उनके चरणोंके समीपमें ऊपरकी ओर बाहुका निर्माण करे। उसके नीचेकी ओर बायें हाथमें कमण्डलु धारण किये हुए वामनकी रचना करे। दाहिने हाथमें एक छोटी-सी छतरी होनी चाहिये। उनका मुख दीनतासे युक्त हो। उन्हींकी बगलमें जलका गेडुआ लिये हुए बलिका निर्माण होना चाहिये। उसी स्थलपर बलिको बाँधते हुए गरुड़को भी दिखाना चाहिये। इसी प्रकार मत्स्यभगवान्की प्रतिमा मछलीके आकारकी तथा कूर्म भगवान्की प्रतिमा कछुएके समान बनानी चाहिये। इस प्रकार भगवान् विष्णु तथा उनके अवतारोंकी प्रतिमाओंका निर्माण होना चाहिये ॥ ३१-३९ ॥

ब्रह्मा कमण्डलुधरः कर्तव्यः स चतुर्मुखः। हंसारूढः क्वचित् कार्यः क्वचिच्च कमलासनः ॥ ४० ॥
वर्णतः पद्मगर्भाभश्चतुर्बाहुः शुभेक्षणः। कमण्डलुं वामकरे स्रुवं हस्ते तु दक्षिणे ॥ ४१ ॥

वामे दण्डधरं तद्वत् स्रुवञ्चापि प्रदर्शयेत्। मुनिभिर्देवगन्धर्वैः स्तूयमानं समंततः ॥ ४२ ॥
कुर्वाणमिव लोकांस्त्रीञ् शुक्लाम्बरधरं विभुम्। मृगचर्मधरं चापि दिव्ययज्ञोपवीतिनम् ॥ ४३ ॥
आज्यस्थालीं न्यसेत् पार्श्वे वेदांश्च चतुरः पुनः। वामपार्श्वेऽस्य सावित्रीं दक्षिणे च सरस्वतीम् ॥ ४४ ॥
अग्रे च ऋषयस्तद्वत् कार्याः पैतामहे पदे।

ब्रह्माको कमण्डलु लिये हुए चार मुखोंसे युक्त बनावे। उनकी प्रतिमा कहीं हंसपर बैठी हुई तथा कहीं कमलपर विराजमान रहती है। उनकी प्रतिमा कमलके भीतरी भागके समान अरुण, चार भुजाओंसे युक्त और सुन्दर नेत्रवाली हो। उनके नीचेके बायें हाथमें कमण्डलु और दाहिने हाथमें स्रुवा हो। उनके ऊपरके बायें हाथमें दण्ड तथा दाहिने हाथमें भी स्रुवा* धारण किये हुए प्रदर्शित करना चाहिये। उनके चारों ओर देवता, गन्धर्व और मुनिगणोंद्वारा स्तुति किये जाते हुए दिखाना चाहिये। ऐसी भूमिका भी दिखाये, मानो वे तीनों लोकोंकी रचनामें प्रवृत्त हैं। वे श्वेत वस्त्रधारी, ऐश्वर्यसम्पन्न, मृगचर्म तथा दिव्य यज्ञोपवीतसे युक्त हों। उनके बगलमें आज्यस्थाली रहे और सामने चारों वेदोंकी मूर्तियाँ हों। उनकी बायीं ओर सावित्री, दाहिनी ओर सरस्वती तथा उनके अग्रभागमें मुनियोंके समूह हों ॥ ४०-४४½ ॥

कार्तिकेयं प्रवक्ष्यामि तरुणादित्यसप्रभम् ॥ ४५ ॥
कमलोदरवर्णाभं कुमारं सुकुमारकम्। दण्डकैश्चीरकैर्युक्तं मयूरवरवाहनम् ॥ ४६ ॥
स्थापयेत् स्वेष्टनगरे भुजान् द्वादश कारयेत्। चतुर्भुजः खर्वटे स्याद् वने ग्रामे द्विबाहुकः ॥ ४७ ॥
शक्तिः पाशस्तथा खड्गः शरः शूलं तथैव च। वरदश्चैकहस्तः स्यादथ चाभयदो भवेत् ॥ ४८ ॥
एते दक्षिणतो ज्ञेयाः केयूरकटकोज्ज्वलाः। धनुः पताका मुष्टिश्च तर्जनी तु प्रसारिता ॥ ४९ ॥
खेटकं ताम्रचूडं च वामहस्ते तु शस्यते। द्विभुजस्य करे शक्तिर्वामे स्यात् कुक्कुटोपरि ॥ ५० ॥
चतुर्भुजे शक्तिपाशौ वामतो दक्षिणे त्वसिः। वरदोऽभयदो वापि दक्षिणः स्यात् तुरीयकः ॥ ५१ ॥

अब मैं कार्तिकेयकी प्रतिमाका वर्णन कर रहा हूँ। उनकी प्रतिमाको मध्यकालीन सूर्यकी भाँति परम तेजोमय, कमलके मध्यभागके समान अरुण, मयूरपर आरूढ़, दण्डों और चीरोंसे सुशोभित, सुकुमार शरीरसे युक्त और बारह भुजाओंवाली बनाना चाहिये। उसे अपने इष्ट नगरमें स्थापित करना चाहिये। खर्वट (पर्वतके समीपके ग्राम)-में इनकी चार भुजाओंवाली और वन अथवा ग्राममें दो बाहुवाली प्रतिमा स्थापित करानी चाहिये। (बारह भुजाओंवाली प्रतिमामें) उनकी दाहिनी ओरके छः हाथोंमें शक्ति, पाश, तलवार, बाण और शूल शोभायमान हों। एक हाथमें अभयमुद्रा अथवा वरदमुद्रा बनानी चाहिये। ये सभी केयूर तथा कटकसे विभूषित उज्ज्वल वर्णके होने चाहिये। बायीं ओरके छः हाथ क्रमशः धनुष, पताका, मुष्टि, फैली हुई तर्जनी, ढाल, मुर्गा—इन वस्तुओंसे युक्त और उसी वर्णके होने चाहिये। दो भुजाओंवाली प्रतिमाके बायें हाथमें शक्ति और दाहिना हाथ कुक्कुटपर न्यस्त रहना चाहिये। चतुर्भुज प्रतिमाकी बायीं ओरके दो हाथोंमें शक्ति और पाश तथा दाहिनी ओरके तीसरे हाथमें तलवार हो और चौथा हाथ अभय अथवा वरद-मुद्रासे युक्त हो ॥ ४५-५१ ॥

विनायकं प्रवक्ष्यामि गजवक्त्रं त्रिलोचनम्। लम्बोदरं चतुर्बाहुं व्यालयज्ञोपवीतिनम् ॥ ५२ ॥
ध्वस्तकर्णं बृहत्तुण्डमेकदंष्ट्रं पृथूदरम्। स्वदन्तं दक्षिणकरे उत्पलं चापरे तथा ॥ ५३ ॥

* कहीं-कहीं उनके ऊपरके दाहिने हाथमें 'वेद' ग्रन्थ या स्रुच् भी निर्दिष्ट है।

मोदकं परशुं चैव वामतः परिकल्पयेत् । बृहत्त्वात्क्षिप्तवदनं पीनस्कन्धाङ्घ्रिपाणिकम् ॥ ५४ ॥
युक्तं तु सिद्धिबुद्धिभ्यामधस्तान्मूषकान्वितम् । कात्यायन्याः प्रवक्ष्यामि रूपं दशभुजं तथा ॥ ५५ ॥
त्रयाणामपि देवानामनुकारानुकारिणीम् । जटाजूटसमायुक्तामर्धेन्दुकृतशेखराम् ॥ ५६ ॥
लोचनत्रयसंयुक्तां पूर्णेन्दुसदृशाननाम् । अतसीपुष्पवर्णाभां सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम् ॥ ५७ ॥
नवयौवनसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम् । सुचारुदशनां तद्वत् पीनोन्नतपयोधराम् ॥ ५८ ॥
त्रिभङ्गस्थानसंस्थानां महिषासुरमर्दिनीम् । त्रिशूलं दक्षिणे दद्यात् खड्गं चक्रं क्रमादधः ॥ ५९ ॥
तीक्ष्णबाणं तथा शक्तिं वामतोऽपि निबोधत । खेटकं पूर्णचापं च पाशमङ्कुशमेव च ॥ ६० ॥
घण्टां वा परशुं वापि वामतः संनिवेशयेत् । अधस्तान्महिषं तद्वद् विशिरस्कं प्रदर्शयेत् ॥ ६१ ॥
शिरश्छेदोद्भवं तद्वद् दानवं खड्गपाणिनम् । हृदि शूलेन निर्भिन्नं निर्यदन्त्रविभूषितम् ॥ ६२ ॥
रक्तरक्तीकृताङ्गं च रक्तविस्फुरितेक्षणम् । वेष्टितं नागपाशेन भ्रुकुटीभीषणाननम् ॥ ६३ ॥
सपाशवामहस्तेन धृतकेशं च दुर्गया ।

अब मैं गणेशजीकी प्रतिमाका विधान बता रहा हूँ । उनकी प्रतिमामें हाथी-सा मुख, तीन नेत्र, लम्बा उदर, चार भुजाएँ, सर्पका यज्ञोपवीत, सिमटा हुआ कान, विशाल शुण्ड, एक दाँत और तोंद स्थूल हो । उनके ऊपरके दाहिने हाथमें अपना दाँत और निचले हाथमें कमल होना चाहिये । बायीं ओरके ऊपरके हाथमें मोदक तथा निचले हाथमें परशु हों । बृहत् होनेके कारण मुख नीचेकी ओर विस्तृत तथा स्कन्ध, पाद और हाथ मोटे होने चाहिये । वह सिद्धि-बुद्धिसे युक्त हो, उसके नीचेकी ओर मूषक बना हो । अब मैं भगवती कात्यायनीकी मूर्तिका वर्णन कर रहा हूँ । वह दस भुजाओंसे युक्त, तीनों देवताओंकी आकृतियों-का अनुकरण करनेवाली, जटा-जूटसे विभूषित, सिरपर अर्धचन्द्रसे सुशोभित, तीन नेत्रोंसे युक्त, पूर्णचन्द्रके समान मुखवाली, अलसी-पुष्पके समान नीलवर्णा, तेजोमय, सुन्दर नेत्रोंसे विभूषित, नवयौवनसम्पन्ना, सभी आभूषणोंसे विभूषित, अत्यन्त सुन्दर दाँतोंसे युक्त, स्थूल एवं उन्नत स्तनोंवाली, त्रिभंगी रूपसे स्थित, महिषासुरनाशिनी आदि चिह्नोंसे युक्त हो । दाहिने हाथोंमें क्रमशः ऊपरसे नीचेकी ओर त्रिशूल, खड्ग, चक्र, तीक्ष्ण बाण और शक्ति तथा बायें हाथोंमें ढाल, धनुष, पाश, अङ्कुश, घण्टा अथवा परशु धारण कराना चाहिये । प्रतिमाके नीचे सिररहित महिषासुरको प्रदर्शित करना चाहिये । वह दानव सिर कटनेपर शरीरसे निकलता हुआ दीख पड़े तथा हाथमें खड्ग, हृदय शूलसे विदीर्ण और बाहर निकलती हुई अँतड़ियोंसे विभूषित हो । वह रक्तसे लथपथ शरीरवाला, विस्फारित लाल नेत्रोंसे युक्त, नागपाशसे परिवेष्टित, टेढ़ी भृकुटीके कारण भीषण मुखाकृति और दुर्गाद्वारा पाशयुक्त बायें हाथसे पकड़ा गया केशवाला हो ॥ ५२–६३½ ॥

वमद्रुधिरवक्त्रं च देव्याः सिंहं प्रदर्शयेत् ॥ ६४ ॥
देव्यास्तु दक्षिणं पादं समं सिंहोपरि स्थितम् । किंचिदूर्ध्वं तथा वाममङ्गुष्ठं महिषोपरि ॥ ६५ ॥
स्तूयमानं च तद्रूपममरैः संनिवेशयेत् । इदानीं सुरराजस्य रूपं वक्ष्ये विशेषतः ॥ ६६ ॥
सहस्रनयनं देवं मत्तवारणसंस्थितम् । पृथूरुवक्षोवदनं सिंहस्कन्धं महाभुजम् ॥ ६७ ॥
किरीटकुण्डलधरं पीवरोरुभुजेक्षणम् । वज्रोत्पलधरं तद्वन्नानाभरणभूषितम् ॥ ६८ ॥
पूजितं देवगन्धर्वैरप्सरोगणसेवितम् । छत्रचामरधारिण्यः स्त्रियः पार्श्वे प्रदर्शयेत् ॥ ६९ ॥
सिंहासनगतं चापि गन्धर्वगणसंयुतम् । इन्द्राणीं वामतश्चास्य कुर्यादुत्पलधारिणीम् ॥ ७० ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रतिमालक्षणे षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६० ॥

*

देवीके सिंहको मुखसे रक्त उगलते हुए प्रदर्शित करना चाहिये। देवीका दाहिना पैर सिंहके ऊपर समानरूपसे स्थित हो तथा बायाँ कुछ ऊपरकी ओर उठा हो, उसका अंगूठा महिषासुरपर लगा हुआ हो। उनकी प्रतिमाको देवगणोंद्वारा स्तुति किये जाते हुए दिखाना चाहिये। (यहाँसे अष्टदिक्पाल या लोकपालोंकी प्रतिमाका वर्णन है) अब मैं देवराज इन्द्रके रूपको विशेष रूपसे कह रहा हूँ। हजार नेत्रोंवाले देवेन्द्रको मत्त गयन्दपर विराजमान बनाना चाहिये। उनके ऊरु, वक्षःस्थल और मुख विशाल हों, कंधे सिंहके समान हों, उनकी भुजाएँ विशाल हों, वे किरीट और कुण्डल धारण किये हों, उनके जघनस्थल, भुजाएँ तथा आँखें स्थूल हों, वे वज्र और कमल धारण किये हों तथा विविध आभूषणोंसे विभूषित हों, देवता और गन्धर्वोंद्वारा पूजित और अप्सराओंद्वारा सेवित हों। उनके पार्श्वमें छत्र और चामर धारण करनेवाली स्त्रियोंको प्रदर्शित करना चाहिये। वे सिंहासनपर विराजमान हों, उनकी बायीं ओर कमल धारण किये हुए इन्द्राणी स्थित हों, वे गन्धर्वोंसे घिरे हों॥ ६४—७०॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें प्रतिमा-लक्षण नामक दो सौ साठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २६०॥

दो सौ एकसठवाँ अध्याय

सूर्यादि विभिन्न देवताओंकी प्रतिमाके स्वरूप, प्रतिष्ठा और पूजा आदिकी विधि

सूत उवाच

प्रभाकरस्य प्रतिमामिदानीं शृणुत द्विजाः। रथस्थं कारयेद् देवं पद्महस्तं सुलोचनम्॥ १॥
सप्ताश्वं चैकचक्रं च रथं तस्य प्रकल्पयेत्। मुकुटेन विचित्रेण पद्मगर्भसमप्रभम्॥ २॥
नानाभरणभूषाभ्यां भुजाभ्यां धृतपुष्करम्। स्कन्धस्थे पुष्करे ते तु लीलयैव धृते सदा॥ ३॥
चोलकच्छन्नवपुषं क्वचिच्चित्रेषु दर्शयेत्। वस्त्रयुग्मसमोपेतं चरणौ तेजसावृतौ॥ ४॥
प्रतीहारौ च कर्तव्यौ पार्श्वयोर्दण्डिपिङ्गलौ। कर्तव्यौ खड्गहस्तौ तौ पार्श्वयोः पुरुषावुभौ॥ ५॥
लेखनीकृतहस्तं च पार्श्वे धातारमव्ययम्। नानादेवगणैर्युक्तमेवं कुर्याद् दिवाकरम्॥ ६॥
अरुणः सारथिश्चास्य पद्मिनीपत्रसंनिभः। अश्वौ सुवलयग्रीवावन्तस्थौ तस्य पार्श्वयोः॥ ७॥
भुजङ्गरज्जुभिर्बद्धाः सप्ताश्वा रश्मिसंयुताः। पद्मस्थं वाहनस्थं वा पद्महस्तं प्रकल्पयेत्॥ ८॥

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणगण! अब आपलोग भगवान् सूर्यकी* प्रतिमाके निर्माणकी विधि सुनिये। भगवान् सूर्यदेवको रथपर स्थित, सुन्दर नेत्रोंसे सुशोभित और दोनों हाथोंमें कमल धारण किये हुए बनाना चाहिये। उनके रथमें सात घोड़े और एक पहिया होनी चाहिये। उन्हें विचित्र मुकुटसे युक्त तथा कमलके मध्यवर्ती भागके समान लालवर्णका बनाना चाहिये। वे विविध आभूषणोंसे विभूषित दोनों भुजाओंमें कमल धारण किये हों, वे कमल सदा लीलापूर्वक ऊपर कंधोंतक उठे हुए हों। उनका स्वरूप विशेषकर पैर दो वस्त्रोंसे आवृत हो। प्रायः चित्रोंमें भी उनकी प्रतिमा दो वस्त्रोंसे ढकी हुई प्रदर्शितकी जानी चाहिये। उनके दोनों चरण तेजसे आवृत हों। मूर्तिके दोनों ओर दण्डी और पिङ्गल नामक दो प्रतीहारोंको रखना चाहिये। उन दोनों पार्श्ववर्ती पुरुषोंके हाथोंमें तलवार बनायी जानी चाहिये। उनके पार्श्वमें एक हाथमें लेखनी लिये हुए अविनाशी

---

* सूर्यप्रतिमाकी विधि अग्निपुराण, अध्याय ५१, भविष्य, नारद, साम्बादिपुराणों, सुप्रभेदागम, शिल्परत्न, शारदा, विष्णुधर्म तथा टी० गोपीनाथ राव, स्टीलाकर्मरिश, बनर्जी आदिके ग्रंथोंमें सानुसंधान विस्तारपूर्वक निर्दिष्ट है। तुलनात्मक अध्ययन तथा जिज्ञासाशान्त्यर्थ ये सभी तथा पुराणागमोंके ध्यान-प्रकरण भी द्रष्टव्य हैं। मतान्तरसे सूर्य भी पूर्व दिशाके स्वामी हैं।

धाताकी मूर्ति हो। भगवान् भास्कर अनेकों देवगणोंसे युक्त हों। इस प्रकार भगवान् सूर्यकी प्रतिमाका निर्माण करना चाहिये। सूर्यदेवके सारथि अरुण हैं, जो कमलदलके सदृश लाल वर्णके हैं। उनके दोनों बगलमें चलते हुए लंबी गरदनवाले अश्व हों। उन सातों अश्वोंको सर्पकी रस्सीसे बाँधकर लगामयुक्त रखना चाहिये। सूर्य-मूर्तिको हाथोंमें कमल लिये हुए कमलपर या वाहनपर स्थित रखना चाहिये ॥ १—८ ॥

वह्नेस्तु लक्षणं वक्ष्ये सर्वकामफलप्रदम्। दीप्तं सुवर्णवपुषमर्धचन्द्रासने स्थितम् ॥ ९ ॥
बालार्कसदृशं तस्य वदनं चापि दर्शयेत्। यज्ञोपवीतिनं देवं लम्बकूर्चधरं तथा ॥ १० ॥
कमण्डलुं वामकरे दक्षिणे त्वक्षसूत्रकम्। ज्वालावितानसंयुक्तमजवाहनमुज्ज्वलम् ॥ ११ ॥
कुण्डस्थं वापि कुर्वीत मूर्ध्नि सप्तशिखान्वितम्। तथा यमं प्रवक्ष्यामि दण्डपाशधरं विभुम् ॥ १२ ॥
महामहिषमारूढं कृष्णाञ्जनचयोपमम्। सिंहासनगतं चापि दीप्ताग्निसमलोचनम् ॥ १३ ॥
महिषश्चित्रगुप्तश्च करालाः किंकरास्तथा। समन्ताद् दर्शयेत् तस्य सौम्यासौम्यान् सुरासुरान् ॥ १४ ॥
राक्षसेन्द्रं तथा वक्ष्ये लोकपालं च नैर्ऋतम्। नरारूढं महाकायं रक्षोभिर्बहुभिर्वृतम् ॥ १५ ॥
खड्गहस्तं महानीलं कज्जलाचलसंनिभम्। नरयुक्तविमानस्थं पीताभरणभूषितम् ॥ १६ ॥
वरुणं च प्रवक्ष्यामि पाशहस्तं महाबलम्। शङ्खस्फटिकवर्णाभं सितहाराम्बरावृतम् ॥ १७ ॥
झषासनगतं शान्तं किरीटाङ्गदधारिणम्। वायुरूपं प्रवक्ष्यामि धूम्रं तु मृगवाहनम् ॥ १८ ॥
चित्राम्बरधरं शान्तं युवानं कुञ्चितभ्रुवम्। मृगाधिरूढं वरदं पताकाध्वजसंयुतम् ॥ १९ ॥

अब मैं सभी प्रकारके अभीष्ट फलोंको देनेवाले अग्निकी प्रतिमाका स्वरूप बतला रहा हूँ। अग्निकी प्रतिमा कनकके समान उद्दीप्त कान्तिवाली बनानी चाहिये। वह अर्धचन्द्राकार आसनपर स्थित हो। उनका मुख उदयकालीन सूर्यकी भाँति दिखाना चाहिये। अग्निदेवको यज्ञोपवीत तथा लम्बी दाढ़ीसे युक्त बनाना चाहिये। उनके बायें हाथमें कमण्डलु और दाहिने हाथमें रुद्राक्षकी माला हो। उनका वाहन बकरा ज्वाला-मण्डलसे विभूषित और उज्ज्वल होना चाहिये। मस्तकपर (या मुखमें) सात जिह्वारूपिणी ज्वालाओंसे युक्त इस प्रतिमाको देवमन्दिर अथवा अग्निकुण्डके मध्यमें स्थापित करना चाहिये। अब मैं यमराजकी प्रतिमाके निर्माणकी विधि बतला रहा हूँ। उनके शरीरका रंग काले अंजनके समान हो। वे दण्ड और पाश धारण करनेवाले, ऐश्वर्ययुक्त और विशाल महिषपर आरूढ़ हों अथवा सिंहासनासीन हों। उनके नेत्र प्रदीप्त अग्निके समान हों। उनके चारों ओर महिष, चित्रगुप्त, विकराल अनुचरवर्ग, मनोहर आकृतिवाले देवताओं तथा विकृत असुरोंकी प्रतिमाओंको भी प्रदर्शित करना चाहिये। अब मैं लोकपाल राक्षसेन्द्र निर्ऋतिकी प्रतिमाकी निर्माण-विधि बतला रहा हूँ। वे मनुष्यपर आरूढ़, विशालकाय, राक्षससमूहोंसे घिरे हुए और हाथमें तलवार लिये हुए हों। उनका वर्ण अत्यन्त नील और कज्जलगिरिके समान दिखायी पड़ता हो। उन्हें पालकीपर सवार और पीले आभूषणोंसे विभूषित बनाना चाहिये। अब मैं महाबली वरुणकी प्रतिमाका वर्णन करता हूँ। वे हाथमें पाश धारण किये हुए स्फटिकमणि और शङ्खके समान श्वेत कान्तिसे युक्त, उज्ज्वल हार और वस्त्रसे विभूषित, झष* (बड़ी मछली) पर आसीन, शान्त मुद्रासे सम्पन्न तथा बाजूबन्द और किरीटसे सुशोभित हों। अब मैं वायुदेवकी प्रतिमाका स्वरूप बतला रहा हूँ। उन्हें धूम्र वर्णसे युक्त, मृगपर आसीन, चित्र-विचित्र वस्त्रधारी, शान्त, युवावस्थासे सम्पन्न, तिरछी भौंहोंसे युक्त, वरदमुद्रा और ध्वज-पताकासे विभूषित बनाना चाहिये ॥ ९—१९ ॥

* शतपथ १। ८। ४ आदिके अनुसार बड़ी मछली ही झष है।

कुवेरं च प्रवक्ष्यामि कुण्डलाभ्यामलङ्कृतम् । महोदरं महाकायं निध्यष्टकसमन्वितम् ॥ २० ॥
गुह्यकैर्बहुभिर्युक्तं धनव्ययकरैस्तथा । हारकेयूररचितं सिताम्बरधरं सदा ॥ २१ ॥
गदाधरं च कर्तव्यं वरदं मुकुटान्वितम् । नरयुक्तविमानस्थमेवं रीत्या च कारयेत् ॥ २२ ॥
तथैवेशं प्रवक्ष्यामि धवलं धवलेक्षणम् । त्रिशूलपाणिनं देवं त्र्यक्षं वृषगतं प्रभुम् ॥ २३ ॥
मातॄणां लक्षणं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः । ब्रह्माणी ब्रह्मसदृशी चतुर्वक्त्रा चतुर्भुजा ॥ २४ ॥
हंसाधिरूढा कर्तव्या साक्षसूत्रकमण्डलुः । महेश्वरस्य रूपेण तथा माहेश्वरी मता ॥ २५ ॥
जटामुकुटसंयुक्ता वृषस्था चन्द्रशेखरा । कपालशूलखट्वाङ्गवरदाढ्या चतुर्भुजा ॥ २६ ॥
कुमाररूपा कौमारी मयूरवरवाहना । रक्तवस्त्रधरा तद्वच्छूलशक्तिधरा मता ॥ २७ ॥
हारकेयूरसम्पन्ना कृकवाकुधरा तथा । वैष्णवी विष्णुसदृशी गरुडे समुपस्थिता ॥ २८ ॥
चतुर्बाहुश्च वरदा शङ्खचक्रगदाधरा । सिंहासनगता वापि बालकेन समन्विता ॥ २९ ॥
वाराहीं च प्रवक्ष्यामि महिषोपरि संस्थिताम् । वराहसदृशी देवी शिरश्चामरधारिणी ॥ ३० ॥
गदाचक्रधरा तद्वद् दानवेन्द्रविनाशिनी । इन्द्राणीमिन्द्रसदृशीं वज्रशूलगदाधराम् ॥ ३१ ॥
गजासनगतां देवीं लोचनैर्बहुभिर्वृताम् । तप्तकाञ्चनवर्णाभां दिव्याभरणभूषिताम् ॥ ३२ ॥

अब मैं कुबेरकी प्रतिमाका वर्णन कर रहा हूँ। वे दो कुण्डलोंसे अलंकृत, तोंदयुक्त, विशालकाय, आठ निधियोंसे संयुक्त, बहुतेरे गुह्यकोंसे घिरे हुए, धन व्यय करनेके लिये उद्यत करोंसे युक्त, केयूर और हारसे विभूषित, श्वेत वस्त्रधारी, वरदमुद्रा, गदा और मुकुटसे विभूषित तथा पालकीपर सवार हों। इस प्रकार उनकी प्रतिमा निर्मित करानी चाहिये। अब मैं सामर्थ्यशाली ईशानदेवकी प्रतिमाका वर्णन कर रहा हूँ। उनके शरीरकी कान्ति तथा नेत्र श्वेत हों। वे सामर्थ्यशाली देव तीन नेत्रोंसे युक्त तथा हाथमें त्रिशूल लिये हुए वृषभपर आरूढ़ हों। अब मैं मातृकाओंकी प्रतिमाओंका लक्षण आनुपूर्वी यथार्थरूपसे बता रहा हूँ। ब्रह्माणीकी प्रतिमाको ब्रह्माजीके समान चार मुख, चार भुजाएँ, अक्षसूत्र और कमण्डलुसे विभूषित तथा हंसपर आसीन बनानी चाहिये। इसी प्रकार भगवान् महेश्वरके अनुरूप माहेश्वरीकी प्रतिमा मानी गयी है। वे जटा-मुकुटसे अलंकृत, वृषभासीन, मस्तकपर चन्द्रमासे विभूषित, क्रमशः कपाल, शूल, खट्वाङ्ग* और वरदमुद्रासे सुशोभित चार भुजाओंसे सम्पन्न हों। कौमारीकी प्रतिमा स्वामिकार्तिकेयके समान निर्मित करानी चाहिये। वे श्रेष्ठ मयूरपर सवार, लाल वस्त्रसे सुशोभित, शूल और शक्ति धारण करनेवाली, हार और केयूरसे विभूषित तथा मुर्गा लिये हुए हों। वैष्णवीकी मूर्ति विष्णुभगवान्‌के समान हो। वे गरुड़पर आसीन हों, उनके चार भुजाएँ हों, जिनमें क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा और वरद-मुद्रा हो। अथवा वे एक बालकसे युक्त सिंहासनपर बैठी हुई हों। अब मैं वाराहीकी प्रतिमाका प्रकार बतलाता हूँ। वे देवी महिषपर बैठी हुई वराहके समान रहती हैं। उनके सिरपर चामर झलता रहना चाहिये। वे हाथोंमें गदा और चक्र लिये हुए बड़े-बड़े दानवोंके विनाशके लिये संनद्ध रहती हैं। इन्द्राणीको इन्द्रके समान वज्र, शूल, गदा धारण किये हुए हाथीपर विराजमान बनाना चाहिये। वे देवी बहुतसे नेत्रोंसे युक्त, तप्त सुवर्णके समान कान्तिमती और दिव्य आभरणोंसे भूषित रहती हैं ॥ २०-३२ ॥

तीक्ष्णखड्गधरां तद्वद् वक्ष्ये योगेश्वरीमिमाम् । दीर्घजिह्वामूर्ध्वकेशीमस्थिखण्डैश्च मण्डिताम् ॥ ३३ ॥
दंष्ट्राकरालवदनां कुर्याच्चैव कृशोदरीम् । कपालमालिनीं देवीं मुण्डमालाविभूषिताम् ॥ ३४ ॥

* खट्वाङ्गका तात्पर्य उस गदासे है, जिसकी आकृति कुछ चारपाईके पायेसे मिलती-जुलती है। इसके सिरपर हड्डी जुड़ी रहती है। यह शिव-शक्तिके आयुधोंमें वर्णित है। (द्र०-वैशम्पायननीतिप्रकाशिका, विश्वामित्रधनुर्वेद आदि)

कपालं वामहस्ते तु मांसशोणितपूरितम्। मस्तिष्काक्तं च बिभ्राणां शक्तिकां दक्षिणे करे ॥ ३५ ॥
गृध्रस्था वायसस्था वा निर्मांसा विनतोदरी। करालवदना तद्वत् कर्तव्या सा त्रिलोचना ॥ ३६ ॥
चामुण्डा बद्धघण्टा वा द्वीपिचर्मधरा शुभा। दिग्वासाः कालिका तद्वद् रासभस्था कपालिनी ॥ ३७ ॥
सुरक्तपुष्पाभरणा वर्धनीध्वजसंयुता। विनायकं च कुर्वीत मातॄणामन्तिके सदा ॥ ३८ ॥
वीरेश्वरश्च भगवान् वृषारूढो जटाधरः। वीणाहस्तस्त्रिशूली च मातॄणामग्रतो भवेत् ॥ ३९ ॥

अब मैं भगवती योगेश्वरी चामुण्डाकी प्रतिमाका वर्णन करता हूँ। वे तीखी तलवार, लम्बी जिह्वा, ऊपर उठे केश तथा हड्डियोंके टुकड़ोंसे विभूषित रहती हैं। उन्हें विकराल दाढ़ोंसे युक्त मुखवाली, दुर्बल उदरसे युक्त, कपालोंकी माला धारण किये और मुण्ड-मालाओंसे विभूषित बनाना चाहिये। उनके बायें हाथमें खोपड़ीसे युक्त एवं रक्त और मांससे पूर्ण खप्पर और दाहिने हाथमें शक्ति हो। वे गृध्र या काकपर बैठी हों। उनका शरीर मांसरहित, उदर भीतर घुसा और मुख अत्यन्त भीषण हो। उन्हें तीन नेत्रोंसे सम्पन्न घण्टा लिये हुए व्याघ्र-चर्मसे सुशोभित या निर्वस्त्र बनाना चाहिये। उसी प्रकार कालिकाको कपाल धारण किये हुए गधेपर सवार बनाना चाहिये। वे लाल पुष्पोंके आभरणोंसे विभूषित तथा झाड़ूकी ध्वजासे युक्त हों। इन मातृकाओंके समीप सर्वदा गणेशकी प्रतिमा भी रखनी चाहिये तथा मातृकाओं-के आगे जटाधारी, हाथोंमें वीणा और त्रिशूल लिये हुए वृषभारूढ़ भगवान् वीरेश्वरको स्थापित करना चाहिये ॥ ३३—३९ ॥

श्रियं देवीं प्रवक्ष्यामि नवे वयसि संस्थिताम्। सुयौवनां पीनगण्डां रक्तोष्ठीं कुञ्चितभ्रुवम् ॥ ४० ॥
पीनोन्नतस्तनतटां मणिकुण्डलधारिणीम्। सुमण्डलं मुखं तस्याः शिरः सीमन्तभूषणम् ॥ ४१ ॥
पद्मस्वस्तिकशङ्खैर्वा भूषितां कुन्तलालकैः। कञ्चुकाबद्धगात्री च हारभूषौ पयोधरौ ॥ ४२ ॥
नागहस्तोपमौ बाहू केयूरकटकोज्ज्वलौ। पद्मं हस्ते प्रदातव्यं श्रीफलं दक्षिणे भुजे ॥ ४३ ॥
मेखलाभरणां तद्वत् तप्तकाञ्चनसप्रभाम्। नानाभरणसम्पन्नां शोभनाम्बरधारिणीम् ॥ ४४ ॥
पार्श्वे तस्याः स्त्रियः कार्याश्चामरव्यग्रपाणयः। पद्मासनोपविष्टा तु पद्मसिंहासनस्थिता ॥ ४५ ॥
करिभ्यां स्नाप्यमानासौ भृङ्गाराभ्यामनेकशः। प्रक्षालयन्तौ करिणौ भृङ्गाराभ्यां तथापरौ ॥ ४६ ॥
स्तूयमाना च लोकेशैस्तथा गन्धर्वगुह्यकैः।

अब मैं लक्ष्मीकी प्रतिमाका प्रकार बतला रहा हूँ। वे नवीन अवस्थामें स्थित, नवयौवनसम्पन्न, उन्नत कपोल-से युक्त, लाल ओष्ठोंवाली, तिरछी भौंहोंसे युक्त तथा मणिनिर्मित कुण्डलोंसे विभूषित हों। उनका मुखमण्डल सुन्दर और सिर सिंदूरभरे माँगसे विभूषित हो। वे पद्म, स्वस्तिक और शङ्खसे तथा घुँघराले बालोंसे सुशोभित हों। उनके शरीरमें चोली बँधी हो और दोनों भुजाएँ हाथीके शुण्डादण्डकी भाँति स्थूल तथा केयूर और कङ्कणसे विभूषित हों। उनके बायें हाथमें कमल और दाहिने हाथमें श्रीफल होना चाहिये। उनकी शरीर-कान्ति तपाये हुए स्वर्णके समान गौर वर्णकी हो। वे करधनीसे विभूषित, विविध आभूषणोंसे सम्पन्न तथा सुन्दर साड़ीसे सुसज्जित हों। उनके पार्श्वमें चँवर धारण करनेवाली स्त्रियोंकी प्रतिमाएँ निर्मित करनी चाहिये। वे पद्मसिंहासनपर पद्मासनसे स्थित हों। उन्हें दो हाथी शुण्डमें गडुए लिये हुए लगातार स्नान करा रहे हों तथा दो अन्य हाथी भी उनपर घटद्वारा जल छोड़ रहे हों। उस समय लोकेश्वरों, गन्धर्वों और यक्षोंद्वारा उनकी स्तुति की जा रही हो ॥ ४०—४६½ ॥

तथैव यक्षिणी कार्या सिद्धासुरनिषेविता ॥ ४७ ॥
पार्श्वयोः कलशौ तस्यास्तोरणे देवदानवाः । नागाश्चैव तु कर्तव्याः खड्गखेटकधारिणः ॥ ४८ ॥
अधस्तात् प्रकृतिस्तेषां नाभेरूर्ध्वं तु पौरुषी । फणाश्च मूर्ध्नि कर्तव्या द्विजिह्वा बहवः समाः ॥ ४९ ॥
पिशाचा राक्षसाश्चैव भूतवेतालजातयः । निर्मांसाश्चैव ते सर्वे रौद्रा विकृतरूपिणः ॥ ५० ॥
क्षेत्रपालश्च कर्तव्यो जटिलो विकृताननः । दिग्वासा जटिलस्तद्वच्छ्वगोमायुनिषेवितः ॥ ५१ ॥
कपालं वामहस्ते तु शिरः केशसमावृतम् । दक्षिणे शक्तिकां दद्यादसुरक्षयकारिणीम् ॥ ५२ ॥
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि द्विभुजं कुसुमायुधम् । पार्श्वे चाश्वमुखं तस्य मकरध्वजसंयुतम् ॥ ५३ ॥
दक्षिणे पुष्पबाणं च वामे पुष्पमयं धनुः । प्रीतिः स्याद् दक्षिणे तस्य भोजनोपस्करान्विता ॥ ५४ ॥
रतिश्च वामपार्श्वे तु शयनं सारसान्वितम् । पटश्च पटहश्चैव खरः कामातुरस्तथा ॥ ५५ ॥
पार्श्वतो जलवापी च वनं नन्दनमेव च । सुशोभनश्च कर्तव्यो भगवान् कुसुमायुधः ॥ ५६ ॥
संस्थानमीषद्वक्त्रं स्याद् विस्मयस्मितवक्त्रकम् ।
एतदुद्देशतः प्रोक्तं प्रतिमालक्षणं मया । विस्तरेण न शक्नोति बृहस्पतिरपि द्विजाः ॥ ५७ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवतार्चानुकीर्तने प्रतिमालक्षणं नामैकषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६१ ॥

इसी प्रकार यक्षिणीकी प्रतिमा सिद्धों तथा असुरोंद्वारा सेवित बनानी चाहिये। उसके दोनों ओर दो कलश और तोरणमें देवताओं, दानवों और नागोंकी प्रतिमा रखनी चाहिये, जो खड्ग और ढाल धारण लिये हुए हों। नीचेकी ओर उन नागोंका प्राकृतिक शरीर और नाभिसे ऊपर मनुष्यकी आकृति रहनी चाहिये। सिरपर बराबरीसे दिखायी पड़नेवाले दो जिह्वाओंसे युक्त बहुत-से फण बनाने चाहिये। पिशाच, राक्षस, भूत और वेताल जातियोंके लोगोंको भी बनाना चाहिये, वे सभी मांसरहित, विकृत रूपवाले और भयंकर हों। क्षेत्रपालकी प्रतिमा जटाओंसे युक्त, विकृत मुखवाली, नग्न, शृगालों और कुत्तोंसे सेवित बनानी चाहिये। उसका सिर केशोंसे आच्छादित हो। उसके बायें हाथमें कपाल और दाहिने हाथमें असुर-विनाशिनी शक्ति होनी चाहिये। अब इसके बाद मैं दो भुजाओंवाले कामदेवकी प्रतिमाका वर्णन कर रहा हूँ। उनकी एक ओर अश्वमुख मकरध्वजकी रचना करनी चाहिये। उनके दाहिने हाथमें पुष्प-बाण और बायें हाथमें पुष्पमय धनुष होना चाहिये। उनकी दाहिनी ओर भोजनकी सामग्रियोंसे युक्त प्रीतिकी तथा बायीं ओर रतिकी प्रतिमा शय्यासन एवं सारस पक्षीसे युक्त होनी चाहिये। उनके बगलमें वस्त्र, नगाड़ा तथा कामलोलुप गधा होना चाहिये। प्रतिमाके एक बगलमें जलसे पूर्ण बावली तथा नन्दनवन हो। इस तरह ऐश्वर्यशाली कामदेवको परम सुन्दर बनाना चाहिये। प्रतिमाकी मुद्रा कुछ वक्र, कुछ विस्मययुक्त और कुछ मुस्कराती हुई हो। ब्राह्मणो! मैंने संक्षेपमें यह प्रतिमाओंका लक्षण बतलाया है। इनका विस्तारपूर्वक वर्णन तो बृहस्पति भी नहीं कर सकते॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें देवतार्चानुकीर्तन-प्रसङ्गमें प्रतिमा-लक्षण नामक दो सौ एकसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥२६१॥

दो सौ बासठवाँ अध्याय

पीठिकाओंके भेद, लक्षण और फल

सूत उवाच

पीठिकालक्षणं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः । पीठोच्छ्रायं यथावच्च भागान् षोडश कारयेत् ॥ १ ॥
भूमावेकः प्रविष्टः स्याच्चतुर्भिर्जगती मता । वृत्तो भागस्तथैकः स्याद् वृतः पटलमागतः ॥ २ ॥

भागैस्त्रिभिस्तथा कण्ठः कण्ठपट्टस्तु भागतः। भागाभ्यामूर्ध्वपट्टश्च शेषभागेन पट्टिका ॥ ३ ॥
प्रविष्टं भागमेकैकं जगतीं यावदेव तु। निर्गमस्तु पुनस्तस्य यावद् वै शेषपट्टिका ॥ ४ ॥
वारिनिर्गमनार्थं तु तत्र कार्यः प्रणालकः। पीठिकानां तु सर्वासामेतत्सामान्यलक्षणम् ॥ ५ ॥
विशेषान् देवताभेदाच्छृणुध्वं द्विजसत्तमाः। स्थण्डिला वाथ वापी वा यक्षी वेदी च मण्डला ॥ ६ ॥
पूर्णचन्द्रा च वज्रा च पद्मा चार्धशशी तथा। त्रिकोणा दशमी तासां संस्थानं वा निबोधत ॥ ७ ॥
स्थण्डिला चतुरस्रा तु वर्जिता मेखलादिभिः। वापी द्विमेखला ज्ञेया यक्षी चैव त्रिमेखला ॥ ८ ॥
चतुरस्रायता वेदी न तां लिङ्गेषु योजयेत्। मण्डला वर्तुला या तु मेखलाभिर्गणप्रिया ॥ ९ ॥
रक्ता द्विमेखला मध्ये पूर्णचन्द्रा तु सा भवेत्। मेखलात्रयसंयुक्ता षडस्रा वज्रिका भवेत् ॥ १० ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! अब मैं आपलोगोंको पीठिकाओंके लक्षणोंको आनुपूर्वी यथार्थरूपसे बतला रहा हूँ। पीठिकाकी ऊँचाईको सोलह भागोंमें विभक्त करे। उनमें बीचेका एक भाग पृथ्वीमें प्रविष्ट रहेगा। ऊपरके शेष चार भाग 'जगती' माने जाते हैं। उनसे ऊपरका एक भाग पटल भागसे घिरा हुआ 'वृत्त' कहलाता है। उसके ऊपर तीन भागोंसे कण्ठ, एक भागसे कण्ठपट्ट, दो भागोंसे ऊर्ध्वपट्ट तथा शेष भागोंसे पट्टिका बनायी जाती है। एक-एक भाग जगतीपर्यन्त एक-दूसरेमें प्रविष्ट रहते हैं। फिर शेषपट्टिका-पर्यन्त सबका निर्गम होता है। पट्टिकामें जल निकलनेके लिये (सोमसूत्रसे मिली) नाली बनानी चाहिये। यह सभी पीठिकाओंका सामान्य लक्षण है। ऋषिगण ! अब देवताओंके भेदसे पीठिकाओंके विशेष लक्षण सुनिये। स्थण्डिला, वापी, यक्षी, वेदी, मण्डला, पूर्णचन्द्रा, वज्रा, पद्मा, अर्धशशी तथा दसवीं त्रिकोणा—ये पीठिकाओंके भेद हैं। अब इनकी स्थिति सुनिये। स्थण्डिला-पीठिका चौकोर होती है, इसमें मेखला आदि कुछ नहीं होती। वापीको दो मेखलाओंसे तथा यक्षीको तीन मेखलाओंसे युक्त जानना चाहिये। चार पहलवाली आयताकार पीठिका वेदी कही जाती है, उसे लिङ्गकी स्थापनामें प्रयुक्त नहीं करना चाहिये। मण्डला मेखलाओंसे युक्त गोलाकार होती है, वह प्रमथगणोंको प्रिय होती है। जो पीठिका लाल वर्णवाली तथा मध्यमें दो मेखलाओंसे युक्त होती है, उसे पूर्णचन्द्रा कहते हैं। तीन मेखलाओंसे युक्त छः कोनेवाली पीठिकाको वज्रा कहते हैं ॥ १—१० ॥

षोडशास्रा भवेत् पद्मा किंचिद्ध्रस्वा तु मूलतः। तथैव धनुषाकारा सार्धचन्द्रा प्रशस्यते ॥ ११ ॥
त्रिशूलसदृशी तद्वत् त्रिकोणा ह्यूर्ध्वतो मता। प्रागुदक्प्रवणा तद्वत् प्रशस्ता लक्षणान्विता ॥ १२ ॥
परिवेषं त्रिभागेन निर्गमं तत्र कारयेत्। विस्तारं तत्प्रमाणं च मूले चाग्रे तथोर्ध्वतः ॥ १३ ॥
जलमार्गश्च कर्तव्यस्त्रिभागेन सुशोभनः। लिङ्गस्यार्धविभागेन स्थौल्येन समधिष्ठिता ॥ १४ ॥
मेखला तत्त्रिभागेन खातं चैव प्रमाणतः। अथवा पादहीनं तु शोभनं कारयेत् सदा ॥ १५ ॥
उत्तरस्थं प्रणालं च प्रमाणादधिकं भवेत्। स्थण्डिलायामथारोग्यं धनं धान्यं च पुष्कलम् ॥ १६ ॥
गोप्रदा च भवेद् यक्षी वेदी सम्पत्प्रदा भवेत्। मण्डलायां भवेत् कीर्तिर्वरदा पूर्णचन्द्रिका ॥ १७ ॥
आयुष्प्रदा भवेद् वज्रा पद्मा सौभाग्यदा भवेत्। पुत्रप्रदार्धचन्द्रा स्यात् त्रिकोणा शत्रुनाशिनी ॥ १८ ॥
देवस्य यजनार्थं तु पीठिका दश कीर्तिताः। शैले शैलमयीं दद्यात् पार्थिवे पार्थिवीं तथा ॥ १९ ॥
दारुजे दारुजां कुर्यान्मिश्रे मिश्रां तथैव च। नान्ययोनिस्तु कर्तव्या सदा शुभफलेप्सुभिः ॥ २० ॥
अर्चायामासमं दैर्घ्यं लिङ्गायामसमं तथा।
यस्य देवस्य या पत्नी तां पीठे परिकल्पयेत्। एतत् सर्वं समाख्यातं समासात् पीठलक्षणम् ॥ २१ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवतार्चानुकीर्तने पीठिकानुकीर्तनं नाम द्विषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६२ ॥

मूल भागमें कुछ छोटी (पद्मपत्र-सी) सोलह पहलोंवाली पीठिका पद्मा कही जाती है। उसी प्रकार धनुषके आकार-वाली पीठिकाको अर्धचन्द्रा कहते हैं। ऊपरसे त्रिशूलके समान दिखायी पड़नेवाली, पूर्व तथा उत्तरकी ओर कुछ ढालू एवं श्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त पीठिकाको त्रिकोणा कहते हैं। पीठिकाके तीन भाग परिधिके बाहर रहें और मूल, अग्र-भाग तथा ऊपर —इन तीनों भागोंके विस्तार अधिक हों। त्रिभागमें जल निकलनेकी सुन्दर नाली (सोमसूत्र) होनी चाहिये। पीठिका लिङ्गके आधे भागकी मोटाईके परिमाणसे बनानी चाहिये। लिङ्गके तीन भागके बराबर मेखलाका खात बनाना चाहिये अथवा वह चौथाई भागसे कम रहे, किंतु सर्वदा सुन्दर बनाना चाहिये। उत्तरकी ओर स्थित नाली प्रमाणसे कुछ अधिक ही बनानी चाहिये। स्थण्डिला-पीठिकाके स्थापित करनेसे आरोग्य तथा विपुल धन-धान्यादिकी प्राप्ति होती है। यक्षी गौ देनेवाली तथा वेदी सम्पत्तिदायिनी कही गयी है। मण्डलामें कीर्ति प्राप्त होती है और पूर्णचन्द्रिका वरदान देनेवाली कही गयी है। वज्रा दीर्घायु प्रदान करनेवाली तथा पद्मा सौभाग्यदायिनी कही गयी है। अर्धचन्द्रा पुत्र प्रदान करनेवाली तथा त्रिकोणा शत्रुनाशिनी होती है। इस प्रकार देवताकी पूजाके लिये ये दस पीठिकाएँ कही गयी हैं। पत्थरकी प्रतिमामें पत्थरकी तथा मिट्टीकी मूर्तिमें मिट्टीकी पीठिका देनी चाहिये। इसी प्रकार काष्ठकी मूर्तिमें काष्ठकी तथा मिश्रित धातुओंकी प्रतिमामें धातुमिश्रितकी पीठिका रखनी चाहिये। शुभ फलकी कामना करने-वालोंको दूसरे प्रकारकी पीठिका कभी नहीं देनी चाहिये। पीठिकाकी लम्बाई मूर्तिमें तथा लिङ्गमें बराबर नहीं रखी जाती। जिस देवताकी जो पत्नी हो, उसे उसी पीठपर स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार यह मैंने आपलोगोंको संक्षेपमें पीठिकाका लक्षण बतलाया है॥ ११—२१॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें देवतार्चानुकीर्तन-प्रसङ्गमें पीठिका-वर्णन नामक दो सौ बासठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २६२॥

दो सौ तिरसठवाँ अध्याय

शिवलिङ्गके निर्माणकी विधि

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि लिङ्गलक्षणमुत्तमम्। सुस्निग्धं च सुवर्णं च लिङ्गं कुर्याद् विचक्षणः॥ १॥
प्रासादस्य प्रमाणेन लिङ्गमानं विधीयते। लिङ्गमानेन वा विद्यात् प्रासादं शुभलक्षणम्॥ २॥
चतुरस्रे समे गर्ते ब्रह्मसूत्रं निपातयेत्। वामेन ब्रह्मसूत्रस्य अर्चा वा लिङ्गमेव च॥ ३॥
प्रागुत्तरेण लीनं तु दक्षिणापरमाश्रितम्। पुरस्यापरदिग्भागे पूर्वद्वारं प्रकल्पयेत्॥ ४॥
पूर्वेण चापरं द्वारं माहेन्द्रं दक्षिणोत्तरम्। द्वारं विभज्य पूर्वं तु एकविंशतिभागिकम्॥ ५॥
ततो मध्यगतं ज्ञात्वा ब्रह्मसूत्रं प्रकल्पयेत्। तस्यार्धं तु त्रिधा कृत्वा भागं चोत्तरतस्त्यजेत्॥ ६॥
एवं दक्षिणतस्त्यक्त्वा ब्रह्मस्थानं प्रकल्पयेत्। भागार्धेन तु यल्लिङ्गं कार्यं तदिह शस्यते॥ ७॥
पञ्चभागविभक्तेषु त्रिभागो ज्येष्ठउच्यते। भाजिते नवधा गर्भे मध्यमं पाञ्चभागिकम्॥ ८॥
एकस्मिन्नेव नवधा गर्भे लिङ्गानि कारयेत्। समसूत्रं विभज्याथ नवधा गर्भभाजितम्॥ ९॥
ज्येष्ठमर्धं कनीयोऽर्धं तथा मध्यममध्यमम्। एवं गर्भः समाख्यातस्त्रिभिर्भागैर्विभाजयेत्॥ १०॥
ज्येष्ठं तु त्रिविधं ज्ञेयं मध्यमं त्रिविधं तथा। कनीयस्त्रिविधं तद्वल्लिङ्गभेदा नवैव तु॥ ११॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! अब मैं लिङ्गके उत्तम लक्षणका वर्णन कर रहा हूँ। चतुर पुरुष अत्यन्त चिकने एवं श्रेष्ठ (श्वेत) रंगके शिवलिङ्गका निर्माण करे। मन्दिरके प्रमाणके अनुसार ही शिवलिङ्गका प्रमाण बतलाया गया है। अथवा शिवलिङ्गके प्रमाणानुसार शिव-मन्दिरका निर्माण शुभ जानना चाहिये। सर्वप्रथम चौकोर एवं समतल गर्तमें ब्रह्मसूत्र गिराना चाहिये। ब्रह्मसूत्रकी बायीं ओर अर्चा या लिङ्गकी स्थापना करनी चाहिये। वहाँ पूर्वोत्तर या दक्षिणपूर्वकी ओर पूर्वद्वार बनाना चाहिये। वह द्वार कुछ दक्षिणाश्रित या ईशानमें लीन रहना चाहिये। पूर्वका यह द्वार माहेन्द्रद्वार कहलाता है। प्रथमतः पूर्वद्वारको इक्कीस भागोंमें विभक्तकर मध्य भागमें ब्रह्मसूत्रकी कल्पना करनी चाहिये। इसके अर्धभागको तीन भागोंमें विभक्तकर उत्तरकी ओर तथा दक्षिणकी ओर एक-एक भाग छोड़कर ब्रह्मस्थानकी कल्पना करनी चाहिये। उस अर्धभागमें लिङ्गकी स्थापना प्रशस्त मानी गयी है। उसे पाँच भागोंमें विभक्त कर उनमें तीन भागोंको ज्येष्ठ कहा जाता है। भीतरी मानको नौ भागोंमें विभक्तकर उसके पञ्चम भागको मध्यम कहते हैं। गर्भके एक ही भागको नौ भागमें विभक्तकर उनमें लिङ्गोंको स्थापित करे। इसी समसूत्र-वाले गर्भ-भागको नौ भागमें विभक्त करे। उनमें आधा ज्येष्ठ, आधा कनिष्ठ और मध्यभाग मध्यम कहलाता है। इस प्रकार गर्भको तीन भागोंमें विभक्त करना चाहिये। फिर उनमें तीन ज्येष्ठ, तीन मध्यम और तीन कनिष्ठ भेद होते हैं, जिससे लिङ्गोंके कुल नौ भेद होते हैं* ॥१–११॥

---

* श्रीविद्यार्णवतन्त्रके ११ वें श्वासमें लिङ्ग-निर्माणकी साधारण विधि इस प्रकार दी गयी है—

अपनी रुचिके अनुसार लिङ्ग कल्पित करके उसके मस्तकका विस्तार उतना ही रखे, जितनी पूजित लिङ्गभागकी ऊँचाई हो। शैवागमका भी वचन है—'लिङ्गमस्तकविस्तारो लिङ्गोच्छ्रायसमो भवेत्।' लिङ्गके मस्तकका विस्तार जितना हो, उससे तिगुने सूत्रसे वेष्टित होने योग्य लिङ्गकी स्थूलता (मोटाई) रखे। शिवलिङ्गकी जो स्थूलता या मोटाई है, उसके सूत्रके बराबर पीठका विस्तार रखे। तत्पश्चात् पूज्य लिङ्गका जो उच्च अंश है, उससे दुगुनी ऊँचाईसे युक्त वृत्ताकार या चतुरस्र पीठ बनावे। पीठके मध्यभागमें लिङ्गके स्थूलतामात्रसूचक नाहसूत्रके द्विगुण सूत्रसे वेष्टित होने योग्य स्थूल कण्ठका निर्माण करे। कण्ठके ऊपर और नीचे समभागसे तीन या दो मेखलाओंकी रचना करे। तदनन्तर लिङ्गके मस्तकका जो विस्तार है, उसको छः भागोंमें विभक्त करे। उनमेंसे एक अंशके मानके अनुसार पीठके ऊपरी भागमें सबसे बाहरी अंशके द्वारा मेखला बनावे। उसके भीतर उसी मानके अनुसार उससे संलग्न अंशके द्वारा खात (गर्त) की रचना करे। पीठसे बाह्यभागमें लिङ्गके समान ही बड़ी अथवा पीठमानके आधे मानके बराबर बड़ी, मूलदेशमें मानके समान विस्तारवाली और अग्रभागमें उसके आधे मानके तुल्य विस्तारवाली नाली बनावे। इसीको 'प्रणाल' कहते हैं। प्रणालके मध्यमें मूलसे अग्रभागपर्यन्त जलमार्ग बनावे। प्रणालका जो विस्तार है, उसके एक तिहाई विस्तार-वाले खातरूप जलमार्गसे युक्त पीठसदृश मेखलायुक्त प्रणाल बनाना चाहिये। यह स्फटिक आदि रत्नविशेषों अथवा पाषाण आदिके द्वारा शिवलिङ्ग-निर्माणकी साधारण विधि है। तथा—

लिङ्गमस्तकविस्तारं पूज्यभागसमं नयेत्। .... लक्षणमाचरेत्॥ (१—८)

'समराङ्गणसूत्रधार'में कहा है कि दो-दो अंशकी वृद्धि करते हुए तीन हाथकी लंबाईतक पहुँचते-पहुँचते नौ लिङ्ग निर्मित हो सकते हैं—'द्व्यंशवृद्धा नवैवं स्युराहस्तत्रितयावधेः।' सूर्यप्रोक्त 'अंशुमद्भेदागम' तथा अग्निपुराण अध्याय ५४के २८वें श्लोकमें एवं विश्वकर्माके 'शिल्पप्रकाश' ग्रन्थमें लिङ्ग-भेदोंकी परिगणना की गयी है और सब मिलाकर चौदह हजार चौदह सौ भेद कहे गये हैं। विश्वकर्माके ही एक दूसरे शास्त्र 'अपराजित-पृच्छा'के अवलोकनसे इन भेदोंपर विशेष प्रकाश पड़ता है। उसके अनुसार समस्तलिङ्गभेद १४४२० होते हैं। इसका प्रकार बताया जाता है—प्रस्तरमय लिङ्ग कम-से-कम एक हाथका होता है, उससे कम नहीं। उसका अन्तिम आयाम नौ हाथका बताया गया है। इस प्रकार एक हाथसे लेकर नौ हाथतकके बनाये जायँ तो उनकी संख्या नौ होती है। इनका प्रस्तार यों समझना चाहिये।

नाभ्यर्धमष्टभागेन विभज्याथ समं बुधैः। भागत्रयं परित्यज्य विष्कम्भं चतुरस्रकम् ॥ १२॥
अष्टास्रं मध्यमं ज्ञेयं भागं लिङ्गस्य वै ध्रुवम्। विकीर्णे चेत् ततो गृह्य कोणाभ्यां लाञ्छयेद् बुधः ॥ १३ ॥
अष्टास्रं कारयेत् तद्वदूर्ध्वमप्येवमेव तु। षोडशास्रीकृतं पश्चाद् वर्तुलं कारयेत् ततः ॥ १४॥
आयामं तस्य देवस्य नाभ्यां वै कुण्डलीकृतम्। माहेश्वरं त्रिभागं तु ऊर्ध्ववृत्तं त्ववस्थितम् ॥ १५॥
अधस्ताद् ब्रह्मभागस्तु चतुरस्रो विधीयते। अष्टास्रो वैष्णवो भागो मध्यस्तस्य उदाहृतः ॥ १६॥
एवं प्रमाणसंयुक्तं लिङ्गं वृद्धिप्रदं भवेत्। तथान्यदपि वक्ष्यामि गर्भमानं प्रमाणतः ॥ १७॥
गर्भमानप्रमाणेन यल्लिङ्गमुचितं भवेत्। चतुर्धा तद् विभज्याथ विष्कम्भं तु प्रकल्पयेत् ॥ १८॥
देवतायतनं सूत्रं भागत्रयविकल्पितम्। अधस्ताच्चतुरस्रं तु अष्टास्रं मध्यभागतः ॥ १९॥
पूज्यभागस्ततोऽर्ध्वं तु नाभिभागस्तथोच्यते। आयामे यद् भवेत् सूत्रं नाहस्य चतुरस्रके ॥ २०॥
चतुरस्रं परित्यज्य अष्टास्रस्य तु यद् भवेत्। तस्याप्यर्धं परित्यज्य ततो वृत्तं तु कारयेत् ॥ २१॥

बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि नाभिके आधे छोड़कर चौकोर विष्कम्भ बनाये। लिङ्गके मध्यभागमें भागके बराबर आठ भाग करे, फिर उनमें तीन भागोंको आठ कोण रहना चाहिये। तदनन्तर बुद्धिमानोंको

एक हाथसे तीन हाथतकके शिवलिङ्ग 'कनिष्ठ' कहे गये हैं। चारसे छः हाथतकके 'मध्यम' माने गये हैं और सातसे नौ हाथतकके 'उत्तम' या 'ज्येष्ठ' कहे गये हैं। इन तीनोंके प्रमाणमें पादवृद्धि करनेसे कुल ३३ शिवलिङ्ग होते हैं। यथा—

एक हाथ[1], सवा[2] हाथ, डेढ़[3] हाथ, पौने[4] दो हाथ, दो हाथ[5], सवा[6] दो हाथ, ढाई हाथ[7], पौने तीन[8] हाथ, तीन हाथ[9], सवा तीन[10] हाथ, साढ़े तीन[11] हाथ, पौने चार[12] हाथ, चार[13] हाथ, सवा चार[14] हाथ, साढ़े चार[15] हाथ, पौने[16] पाँच हाथ, पाँच[17] हाथ, सवा[18] पाँच हाथ, साढ़े पाँच[19] हाथ, पौने छः[20] हाथ, छः[21] हाथ, सवा छः[22] हाथ, साढ़े[23] छः हाथ, पौने[24] सात हाथ, सात[25] हाथ, सवा सात[26] हाथ, साढ़े[27] सात हाथ, पौने आठ[28] हाथ, आठ[29] हाथ, सवा[30] आठ हाथ, साढ़े[31] आठ हाथ, पौने नौ[32] हाथ, नौ[33] हाथ।

इन तैंतीसोंके नाम विश्वकर्माने क्रमशः इस प्रकार बताये हैं—१. भव, २. भवोद्भव, ३. भाव, ४. संसारभय-नाशन, ५. पाशयुक्त, ६. महातेज, ७. महादेव, ८. परात्पर, ९. ईश्वर, १०. शेखर, ११. शिव, १२. शान्त, १३. मनोह्लादक, १४. रुद्रतेज, १५. सदात्मक (सद्योजात), १६. वामदेव, १७. अघोर, १८. तत्पुरुष, १९. ईशान, २०. मृत्युंजय. २१. विजय, २२. किरणाक्ष, २३. अघोरास्त्र, २४. श्रीकण्ठ, २५. पुण्यवर्धन, २६. पुण्डरीक, २७. सुवक्त्र, २८. उमातेजः, २९. विश्वेश्वर, ३०. त्रिनेत्र, ३१. त्र्यम्बक, ३२. घोर, ३३. महाकाल।

पूर्वोक्त क्रमसे पादार्धवृद्धि करनेपर	६५	तक संख्या पहुँचेगी।
,, ,, दो अङ्गुल वृद्धि करनेपर	९७	,, ,, ,,
,, ,, एक ,, ,, ,,	१९३	,, ,, ,,
,, ,, अर्धाङ्गुल ,, ,,	३८५	,, ,, ,,
,, ,, अङ्गुलका चतुर्थांश बढ़ानेपर	७६९	,, ,, ,,
,, ,, एक-एक मूँगके मानकी वृद्धि करनेपर	१४४२	,, ,, ,,
,, ,, मुद्ग-प्रमाण लिङ्गोंमें प्रत्येकके दस भेद करनेपर	१४४२०	पहुँचेगी।

'देवमूर्तिप्रकरणम्' नामक ग्रन्थके छठे अध्यायमें शिवजीकी चौबीस मूर्तियाँ बतायी गयी हैं। उनके लिङ्ग धातु, रत्न, काष्ठ और शिलाके बनाये जाते हैं। इनमें नागरलिङ्ग, द्राविणलिङ्ग, वेशरलिङ्ग, स्फाटिकलिङ्ग तथा बाणलिङ्गका विशेष महत्त्व है। वहाँ इन लिङ्गोंके पृथक्-पृथक् नाम और निर्माणकी विधि दी गयी है। साथ ही प्रासाद, पीठिका और प्रणाल आदिका विशेषरूपसे निरूपण किया गया है। इस विषयपर सर्वाधिक विस्तार 'अंशुमद्भेदागम' (काश्यपशिल्प) तथा 'वीरमित्रादेय लक्षणप्रकाश पृ० ५८९ से ६३० (मुख्यतः ६०४-६)में है। विशेष जानकारीके लिये उन्हीं प्रकरणोंको देखना चाहिये।

बचे हुए भागको दो कोणोंसे लाञ्छित करना चाहिये। उसी प्रकार ऊपरका भाग भी आठ कोणोंवाला बनाये। सोलह कोणवाले भागको गोलाकारमें परिणत कर दे। उस देवताकी नाभिमें लम्बाई कुण्डलीकृत माहेश्वर भागका होगी। लिङ्गमें भाग ऊर्ध्व-वृत्तरूपसे स्थित त्रिभाग होगा। उसके नीचे ब्रह्मभाग होगा, जो चौकोर बनाया जाता है। मध्यभाग, जो आठ कोणोंवाला होता है, वैष्णव-भाग कहा जाता है। इन प्रमाणोंसे निर्मित लिङ्ग समृद्धि देनेवाला होता है। अब गर्भमानके प्रमाणसे बननेवाले लिङ्गका वर्णन कर रहा हूँ। जो लिङ्ग गर्भमानके प्रमाणसे निर्मित होता है, वह उचित होता है। उसे चार भागोंमें विभक्तकर विष्कम्भकी कल्पना करे। देवायतनको सूत्रद्वारा नापकर उसे तीन भागोंमें विभक्त करे। जिसमें नीचेका भाग चार कोणवाला और मध्यभाग आठ कोणवाला हो। इसके ऊपर पूज्यभाग और नाभिभाग कहा जाता है। लम्बाईका विस्तार चौकोर प्रमाणका होना चाहिये। उस चौकोर भागको छोड़कर आठ कोणवाला जो भाग हो, उसके आधे भागको छोड़कर वृत्ताकार बनाना चाहिये॥१२—२१॥

शिरः प्रदक्षिणं तस्य संक्षिप्तं मूलतो न्यसेत्। अष्टपूज्यं भवेल्लिङ्गमधस्ताद् विपुलं च यत्॥२२॥
शिरसा च सदा निम्नं मनोज्ञं लक्षणान्वितम्। सौम्यं तु दृश्यते यत्तु लिङ्गं तद् वृद्धिदं भवेत्॥२३॥
अथ मूले च मध्ये तु प्रमाणे सर्वतः समम्। एवंविधं तु यल्लिङ्गं भवेत् तत् सार्वकामिकम्॥२४॥
अन्यथा यद् भवेल्लिङ्गं तदसत् सम्प्रचक्षते।
एवं रत्नमयं कुर्यात् स्फाटिकं पार्थिवं तथा। शुभं दारुमयं चापि यद् वा मनसि रोचते॥२५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवतार्चानुकीर्तनं नाम त्रिषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२६३॥

उसके मङ्गलमय सिरको मूलदेशसे बिलकुल सीधे रूपमें स्थापित करे। जिस लिङ्गके नीचेका भाग बहुत चौड़ा होता है, वह पूजनीय नहीं रह जाता। जो लिङ्ग सिरकी ओरसे सदा निम्न, मनोहर, उत्तम लक्षणोंसे युक्त तथा सौम्य दिखायी पड़ता है, वह समृद्धिको देनेवाला होता है। जो लिङ्ग मूल तथा मध्यभागमें एक समान रहता है, वह सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला होता है। जो लिङ्ग इन उपर्युक्त लक्षणोंसे भिन्न होते हैं, वे असत् कहे जाते हैं अर्थात् वे अपूजनीय लिङ्ग हैं। इस प्रकार ऊपर बताये गये प्रमाणोंके अनुसार रत्न, स्फटिक, मिट्टी अथवा शुभ काष्ठका लिङ्ग अपनी रुचिके अनुकूल स्थापित करना चाहिये॥२२—२५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें देवतार्चानुकीर्तन नामक दो सौ तिरसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥२६३॥

दो सौ चौंसठवाँ अध्याय

प्रतिमा-प्रतिष्ठाके प्रसङ्गमें यज्ञाङ्गरूप कुण्डादिके निर्माणकी विधि

ऋषय ऊचुः

देवतानामथैतासां प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम्। वद सूत यथान्यायं सर्वेषामप्यशेषतः॥१॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! अब आप इन सभी देवताओंकी प्रतिमाके स्थापनकी उत्तम विधि यथार्थरूपसे विस्तारपूर्वक बतलाइये॥१॥

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम् । कुण्डमण्डपवेदीनां प्रमाणं च यथाक्रमम् ॥ २ ॥
चैत्रे वा फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माधवे तथा । माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत् ॥ ३ ॥
प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लमतीते दक्षिणायने । पञ्चमी च द्वितीया च तृतीया सप्तमी तथा ॥ ४ ॥
दशमी पौर्णमासी च तथा श्रेष्ठा त्रयोदशी । आसु प्रतिष्ठा विधिवत् कृता बहुफला भवेत् ॥ ५ ॥
आषाढे द्वे तथा मूलमुत्तराद्वयमेव च । ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदा तथा ॥ ६ ॥
हस्ताश्विनी रेवती च पुष्यो मृगशिरास्तथा । अनुराधा तथा स्वाती प्रतिष्ठादिषु शस्यते ॥ ७ ॥
बुधो बृहस्पतिः शुक्रस्त्रयोऽप्येते शुभग्रहाः । एभिर्निरीक्षितं लग्नं नक्षत्रं च प्रशस्यते ॥ ८ ॥
ग्रहताराबलं लब्ध्वा ग्रहपूजां विधाय च । निमित्तं शकुनं लब्ध्वा वर्जयित्वाद्भुतादिकम् ॥ ९ ॥
शुभयोगे शुभस्थाने क्रूरग्रहविवर्जिते । लग्ने ऋक्षे प्रकुर्वीत प्रतिष्ठादिकमुत्तमम् ॥ १० ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! अब मैं क्रमशः देवप्रतिमाकी प्रतिष्ठाकी उत्तम विधि तथा मण्डप, कुण्ड और वेदीके प्रमाणको बतला रहा हूँ । फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ अथवा माघमासमें सभी देवताओंकी प्रतिष्ठा शुभदायिनी होती है । दक्षिणायन बीत जानेपर अर्थात् उत्तरायणमें शुभकारी शुक्लपक्षमें द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, दशमी, त्रयोदशी, पूर्णमासी तिथियोंमें विधिपूर्वक की गयी प्रतिष्ठा बहुत फल देनेवाली होती है । पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, मूल, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, ज्येष्ठा, श्रवण, रोहिणी, पूर्वाभाद्रपद, हस्त, अश्विनी, रेवती, पुष्य, मृगशिरा, अनुराधा तथा स्वाती—ये नक्षत्र प्रतिष्ठा आदिमें प्रशस्त माने गये हैं । बुध, बृहस्पति तथा शुक्र—ये तीनों ग्रह शुभकारक हैं । इन तीनों ग्रहोंसे दृष्ट (एवं युक्त) लग्न तथा नक्षत्र प्रशंसनीय हैं । ग्रह और ताराका बल प्राप्तकर तथा उनकी पूजाकर शुभ शकुनको देखकर, अद्भुत आदि बुरे योगोंको छोड़कर शुभयोगमें शुभस्थानपर क्रूर ग्रहोंसे रहित शुभ लग्न एवं शुभ नक्षत्रमें प्रतिष्ठा आदि उत्तम कार्योंको करना चाहिये ॥ २-१० ॥

अयने विषुवे तद्वत् षडशीतिमुखे तथा । एतेषु स्थापनं कार्यं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ११ ॥
प्राजापत्ये तु शयनं श्वेते तूत्थापनं तथा । मुहूर्ते स्थापनं कुर्यात् पुनर्ब्राह्मे विचक्षणः ॥ १२ ॥
प्रासादस्योत्तरे वापि पूर्वे वा मण्डपो भवेत् । हस्तान् षोडश कुर्वीत दश द्वादश वा पुनः ॥ १३ ॥
मध्ये वेदिकया युक्तः परिक्षिप्तः समंततः । पञ्च सप्तापि चतुरः करान् कुर्वीत वेदिकाम् ॥ १४ ॥
चतुर्भिस्तोरणैर्युक्तो मण्डपः स्याच्चतुर्मुखः । प्लक्षद्वारं भवेत् पूर्वे याम्ये चौदुम्बरं भवेत् ॥ १५ ॥
पश्चादश्वत्थघटितं नैयग्रोधं तथोत्तरे । भूमौ हस्तप्रविष्टानि चतुर्हस्तानि चोच्छ्रये ॥ १६ ॥
सूपलिप्तं तथा श्लक्ष्णं भूतलं स्यात् सुशोभनम् । वस्त्रैर्नानाविधैस्तद्वत् पुष्पपल्लवशोभितम् ॥ १७ ॥
कृत्वैवं मण्डपं पूर्वं चतुर्द्वारेषु विन्यसेत् । अव्रणान् कलशानष्टौ ज्वलत्काञ्चनगर्भितान् ॥ १८ ॥
चूतपल्लवसंछन्नान् सितवस्त्रयुगान्वितान् । सर्वौषधिफलोपेतांश्चन्दनोदकपूरितान् ॥ १९ ॥
एवं निवेश्य तद्गर्भे गन्धधूपार्चनादिभिः । ध्वजादिरोहणं कार्यं मण्डपस्य समन्ततः ॥ २० ॥

अयन (कर्क-मकर), विषुव (तुला-मेष) और षडशीतिमुख (कन्या, मिथुन, धनुर्मीन) संक्रान्तियोंमें विधिपूर्वक अनुष्ठानद्वारा देवस्थापन करना चाहिये । चतुर मनुष्यको चाहिये कि वह प्राजापत्य मुहूर्तमें शयन, श्वेतमें उत्थापन तथा ब्राह्ममें स्थापन करे । अपने महलकी पूर्व अथवा उत्तर दिशामें मण्डप बनवाना चाहिये । उसे सोलह, बारह अथवा दस हाथका बनाना चाहिये । उसके मध्यभागमें वेदी होनी चाहिये,

जो चारों ओरसे समान तथा पाँच, सात या चार हाथ विस्तृत हो। चतुर्मुख मण्डपके चारों ओर चार तोरण बने हों। पूर्व दिशामें पाकड़का, दक्षिणमें गूलरका, पश्चिममें पीपलका तथा उत्तरमें बरगदका द्वार होना चाहिये, जो भूमिमें एक हाथ प्रविष्ट हों तथा भूमिसे ऊपर चार हाथ ऊंचे हों। उसका भूतल भलीभाँति लिपा हुआ, चिकना तथा सुन्दर होना चाहिये। इसी प्रकार विविध वस्त्र, पुष्प और पल्लवोंसे सुशोभित करना चाहिये। इस प्रकार मण्डपका निर्माण कर पहले चारों द्वारोंपर छिद्ररहित आठ कलशोंकी स्थापना करनी चाहिये, जो देदीप्यमान सुवर्णकी भाँति कान्तियुक्त, आमके पल्लवोंसे आच्छादित, दो श्वेत वस्त्रोंसे युक्त, सभी ओषधियों एवं फलोंसे सम्पन्न तथा चन्दनमिश्रित जलसे परिपूर्ण हों। इस प्रकार उन कलशोंको स्थापित कर गन्ध, धूप आदि पूजन-सामग्रियोंद्वारा उनके भीतर पूजन करे। फिर मण्डपके चारों ओर ध्वजा आदिकी स्थापना करनी चाहिये॥ ११—२०॥

ध्वजांश्च लोकपालानां सर्वदिक्षु निवेशयेत्। पताका जलदाकारा मध्ये स्यान्मण्डपस्य तु॥ २१॥
गन्धधूपादिकं कुर्यात् स्वैः स्वैर्मन्त्रैरनुक्रमात्। बलिं च लोकपालेभ्यः स्वमन्त्रेण निवेदयेत्॥ २२॥
ऊर्ध्वं तु ब्रह्मणे देयं त्वधस्ताच्छेषवासुकेः। संहितायां तु ये मन्त्रास्तद्दैवत्याः शुभाः स्मृताः॥ २३॥
तैः पूजा लोकपालानां कर्तव्या च समन्ततः। त्रिरात्रमेकरात्रं वा पञ्चरात्रमथापि वा॥ २४॥
अथवा सप्तरात्रं तु कार्यं स्यादधिवासनम्। एवं सतोरणं कृत्वा अधिवासनमुत्तमम्॥ २५॥
तस्याप्युत्तरतः कुर्यात् स्नानमण्डपमुत्तमम्। तदर्धेन त्रिभागेन चतुर्भागेन वा पुनः॥ २६॥
आनीय लिङ्गमर्चां वा शिल्पिनः पूजयेद् बुधः। वस्त्राभरणरत्नैश्च येऽपि तत्परिचारकाः॥ २७॥
क्षमध्वमिति तान् ब्रूयाद् यजमानोऽप्यतः परम्। देवं प्रस्तरणे कृत्वा नेत्रज्योतिः प्रकल्पयेत्॥ २८॥

लोकपालोंकी पताका सभी दिशाओंमें स्थापित करे। मण्डपके मध्यभागमें बादलके रंगकी अथवा बहुत ऊँची पताका स्थापित करनी चाहिये। फिर क्रमशः लोकपालोंके पृथक्-पृथक् मन्त्रोंद्वारा गन्ध-धूपादिसे उनकी पूजा करे तथा उन्हींके मन्त्रोंद्वारा उन्हें बलि प्रदान करे। ब्रह्माजीके लिये ऊपर तथा शेष वासुकिके लिये नीचे पूजाका विधान कहा गया है। संहितामें जो मन्त्र जिस देवताके लिये आये हैं, उसीके लिये प्रयुक्त होनेपर मङ्गलकारी माने गये हैं। उन्हीं मन्त्रोंद्वारा चारों ओर लोकपालोंकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् तीन रात, एक रात, पाँच रात अथवा सात राततक उनका अधिवासन करना चाहिये। इस प्रकार तोरण तथा उत्तम अधिवासन कर उक्त मण्डपकी उत्तर दिशामें उसके आधे, तिहाई अथवा चौथाई भागके परिमाणसे उत्तम स्नानमण्डपका निर्माण करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष लिङ्ग या मूर्तिको लाकर कारीगरों तथा उनके सभी अनुचरोंकी वस्त्र, आभूषण और रत्नद्वारा पूजा करे। तदनन्तर यजमान उनसे यह कहे कि 'मेरे अपराधोंको क्षमा कीजिये।' तत्पश्चात् देवताको बिछौनेपर लिटाकर उनकी नेत्रज्योति सम्पादित करे॥ २१—२८॥

अक्ष्णोरुद्धरणं वक्ष्ये लिङ्गस्यापि समासतः। सर्वतस्तु बलिं दद्यात् सिद्धार्थघृतपायसैः॥ २९॥
शुक्लपुष्पैरलङ्कृत्य घृतगुग्गुलधूपितम्। विप्राणां चार्चनं कुर्याद् दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम्॥ ३०॥
गां महीं कनकं चैव स्थापकाय निवेदयेत्। लक्षणं कारयेद्भक्त्या मन्त्रेणानेन वै द्विजः॥ ३१॥
ओं नमो भगवते तुभ्यं शिवाय परमात्मने। हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय ते नमः॥ ३२॥
मन्त्रोऽयं सर्वदेवानां नेत्रज्योतिष्वपि स्मृतः। एवमामन्त्र्य देवेशं काञ्चनेन विलेखयेत्॥ ३३॥
मङ्गल्यानि च वाद्यानि ब्रह्मघोषं सगीतकम्। वृद्ध्यर्थं कारयेद् विद्वानमङ्गल्यविनाशनम्॥ ३४॥
लक्षणोद्धरणं वक्ष्ये लिङ्गस्य सुसमाहितः। त्रिधा विभज्य पूज्यायां लक्षणं स्याद् विभाजकम्॥ ३५॥

लेखात्रयं तु कर्तव्यं यवाष्टान्तरसंयुतम् । न स्थूलं न कृशं तद्वन्न वक्रं छेदवर्जितम् ॥ ३६ ॥
निम्नं यवप्रमाणेन ज्येष्ठलिङ्गस्य कारयेत् । सूक्ष्मास्ततस्तु कर्तव्या यथा मध्यमके न्यसेत् ॥ ३७ ॥
अष्टभक्तं ततः कृत्वा त्यक्त्वा भागत्रयं बुधः । लम्बयेत् सप्त रेखास्तु पार्श्वयोरुभयोः समाः ॥ ३८ ॥
तावत् प्रलम्बयेद् विद्वान् यावद्भागचतुष्टयम् । भ्राम्यते पञ्चभागोर्ध्वं कारयेत् संगमं ततः ॥ ३९ ॥
रेखयोः संगमे तद्वत् पृष्ठे भागद्वयं भवेत् । एवमेतत्समाख्यातं समासाल्लक्षणं मया ॥ ४० ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रतिष्ठानुकीर्तनं नाम चतुःषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६४ ॥

अब मैं संक्षेपमें नेत्रों तथा अन्य चिह्नोंके उद्धारका प्रकार बता रहा हूँ । पहले देवताके चारों ओर पीली सरसों, घृत और खीरद्वारा बलि प्रदान करे । फिर श्वेत पुष्पोंसे अलंकृतकर घृत और गुग्गुलसे धूप करनेके बाद ब्राह्मणोंकी पूजा करे और उन्हें अपनी शक्तिके अनुकूल दक्षिणा दे । स्थापना करानेवाले ब्राह्मणको गौ, पृथ्वी तथा सुवर्णकी दक्षिणा देनी चाहिये । फिर ब्राह्मण भक्तिपूर्वक इस मन्त्रद्वारा देवप्रतिमामें नेत्र (ज्योति) की स्थापना करे अथवा करवाये । मन्त्र यों है—

'ॐ नमो भगवते तुभ्यं शिवाय परमात्मने ।
हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय ते नमः ।'

'विष्णो ! आप शिव, परमात्मा, हिरण्यरेता, विश्वरूप और ऐश्वर्यशाली हैं, आपको बारंबार नमस्कार है ।' यह मन्त्र सभी देवताओंकी प्रतिमाके नेत्रज्योति-संस्कारमें उपयोगी माना गया है । इस प्रकार देवेशको आमन्त्रित कर सुवर्णकी शलाकाद्वारा उन्हें चिह्नित करे । तदुपरान्त विद्वान् पुरुष अपनी समृद्धि तथा अमङ्गलका विनाश करनेके लिये माङ्गलिक वाद्य, गीत और ब्राह्मणोंकी वेदध्वनियोंका समारोह करे । अब मैं स्वस्थ-चित्त होकर लिङ्गके लक्षणोद्धारणका प्रकार बता रहा हूँ । लिङ्गके तीन भाग करना चाहिये । उसमें विभाजक लक्षण होता है । आठ जौंका अन्तर रखते हुए तीन रेखा चिह्नित करनी चाहिये, वे न तो मोटी हों, न सूक्ष्म हों, न टेढ़ी हों और न उनमें छिद्र हो । ज्येष्ठ लिङ्गमें जौंके प्रमाणकी निम्न रेखा अंकित करनी चाहिये । उसके ऊपर उससे सूक्ष्म रेखा बनाये और मध्यम लिङ्गमें स्थापित करे । फिर बुद्धिमान् पुरुष आठ भाग करके तीन भागोंको छोड़ दे और दोनों पार्श्वोंमें समान अन्तर रखते हुए सात लम्बी रेखाएँ चिह्नित करे । विद्वान् पुरुष चार भागोंतक रेखाएँ चिह्नित करे, पाँचवें भागके ऊपर रेखा घुमानी चाहिये और तदनन्तर मिला देनी चाहिये । यहीं पृष्ठभागमें रेखाओंका संगम होगा । इन दो रेखाओंके संगमस्थलपर पृष्ठदेशमें दो भाग हो जायँगे । इस प्रकार मैंने संक्षेपमें यह लक्षणका वर्णन किया है ॥ २९—४० ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें प्रतिष्ठानुकीर्तन नामक दो सौ चौंसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २६४ ॥

दो सौ पैंसठवाँ अध्याय

प्रतिमाके अधिवासन आदिकी विधि

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि मूर्तिपानां तु लक्षणम् । स्थापकस्य समासेन लक्षणं शृणुत द्विजाः ॥ १ ॥
सर्वावयवसम्पूर्णो वेदमन्त्रविशारदः । पुराणवेत्ता तत्त्वज्ञो दम्भलोभविवर्जितः ॥ २ ॥
कृष्णसारमये देशे उत्पन्नश्च शुभाकृतिः । शौचाचारपरो नित्यं पाषण्डकुलनिःस्पृहः ॥ ३ ॥
समः शत्रौ च मित्रे च ब्रह्मोपेन्द्रहरप्रियः । ऊहापोहार्थतत्त्वज्ञो वास्तुशास्त्रस्य पारगः ॥ ४ ॥
आचार्यस्तु भवेन्नित्यं सर्वदोषविवर्जितः । मूर्तिपास्तु द्विजाश्चैव कुलीना ऋजवस्तथा ॥ ५ ॥

द्वात्रिंशत्षोडशाथापि अष्टौ वा श्रुतिपारगाः । ज्येष्ठमध्यकनिष्ठेषु मूर्तिपा वः प्रकीर्तिताः ॥ ६ ॥
ततो लिङ्गमथार्चां वा नीत्वा स्नपनमण्डपम् । गीतमङ्गलशब्देन स्नपनं तत्र कारयेत् ॥ ७ ॥
पञ्चगव्यकषायेण मृद्भिर्भस्मोदकेन वा । शौचं तत्र प्रकुर्वीत वेदमन्त्रचतुष्टयात् ॥ ८ ॥
समुद्रज्येष्ठमन्त्रेण आपोदिव्येति चापरः । यासां राजेति मन्त्रस्तु आपोहिष्ठेति चापरः ॥ ९ ॥
एवं स्नाप्य ततो देवं पूज्य गन्धानुलेपनैः । प्रच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन अभिवस्त्रेत्युदाहृतम् ॥ १० ॥

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! अब मैं संक्षेपमें मूर्तियोंकी रक्षा-पूजा करनेवाले पुजारी तथा प्रतिष्ठा करानेवाले ब्राह्मणोंका लक्षण बतला रहा हूँ, सुनिये । जो सम्पूर्ण शारीरिक अङ्ग-प्रत्यङ्गोंसे सम्पन्न, वेदमन्त्र-विशारद, पुराणोंका मर्मज्ञ, तत्त्वदर्शी, दम्भ एवं लोभसे रहित, कृष्णसारमृगसे युक्त देशमें उत्पन्न, सुन्दर आकृतिवाला, नित्य शौच एवं आचारमें तत्पर, पाखण्डसमूहसे दूर, मित्र और शत्रुमें सम, ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकरका प्रिय, ऊहापोहके अर्थका तत्त्वज्ञ, वास्तुशास्त्रका पारंगत विद्वान् तथा सभी दोषोंसे रहित हो, ऐसा व्यक्ति आचार्य होने योग्य है । इसी प्रकार मूर्तिकी रक्षा करनेवाले ब्राह्मणोंका भी सत्कुलोत्पन्न तथा मृदु स्वभावका होना चाहिये । ज्येष्ठ, मध्य और कनिष्ठमूर्तियोंकी प्रतिष्ठामें क्रमशः बत्तीस, सोलह और आठ वेदपारगामी ब्राह्मण मूर्तिरक्षक ऋत्विज बतलाये गये हैं । तदनन्तर लिङ्ग अथवा मूर्तिको गीत तथा माङ्गलिक शब्दपूर्वक मण्डपके स्नानकक्षमें लाकर स्नान कराना चाहिये । (स्नानकी विधि यह है—) वहाँ पञ्चगव्य, कषाय, मृत्तिका, भस्म, जल—इन सामग्रियोंद्वारा चार वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए प्रतिमाका मार्जन करना चाहिये । वे चारों मन्त्र इस प्रकार हैं—**'समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य०'**, (ऋक् सं० ७ । ४९ । १) **'आपो दिव्याः०'**, (ऋक् सं० ७ । ४९ । २) **यासां राजा०'** (वही १ । ३) तथा **'आपो हि ष्ठा०'** (वाजस० सं० ११ । ५०) । इस प्रकार देवताकी प्रतिमाको स्नान कराकर **'गन्धद्वारा'** इस मन्त्रसे सुगन्धित द्रव्य-चन्दनादिसे पूजा करे और दो वस्त्रोंसे ढँककर शयन करावे । यह 'अभिवस्त्र' की विधि है ॥ १–१० ॥

उत्थापयेत्ततो देवमुत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते । आसूरजेति च तथा रथे तिष्ठेति चापरः ॥ ११ ॥
रथे ब्रह्मरथे वापि धृतां शिल्पिगणेन तु । आरोप्य च ततो विद्वानाकृष्णेन प्रवेशयेत् ॥ १२ ॥
ततः प्रास्तीर्य शय्यायां स्थापयेच्छनकैर्बुधः । कुशानास्तीर्य पुष्पाणि स्थापयेत्प्राङ्मुखं ततः ॥ १३ ॥
ततस्तु निद्राकलशं वस्त्रकाञ्चनसंयुतम् । शिरोभागे तु देवस्य जपन्नेवं निधापयेत् ॥ १४ ॥
आपोदेवीति मन्त्रेण आपोऽस्मान् मातरोऽपि च । ततो दुकूलपट्टैश्चाच्छाद्य नेत्रोपधानकम् ॥ १५ ॥
दद्याच्छिरसि देवस्य कौशेयं वा विचक्षणः । मधुना सर्पिषाभ्यज्य पूज्य सिद्धार्थकैस्ततः ॥ १६ ॥
आप्यायस्वेति मन्त्रेण या ते रुद्र शिवेति च । उपविश्यार्चयेद् देवं गन्धपुष्पैः समन्ततः ॥ १७ ॥
सितं प्रतिसरं दद्याद् बार्हस्पत्येति मन्त्रतः । दुकूलपट्टैः कार्पासैर्नानाचित्रैरथापि वा ॥ १८ ॥
आच्छाद्य देवं सर्वत्र छत्रचामरदर्पणम् । पार्श्वतः स्थापयेत्तत्र वितानं पुष्पसंयुतम् ॥ १९ ॥
रत्नान्योषधयस्तत्र गृहोपकरणानि च । भाजनानि विचित्राणि शयनान्यासनानि च ॥ २० ॥
अभि त्वा शूरमन्त्रेण यथा विभवतो न्यसेत् । क्षीरं क्षौद्रं घृतं तद्वद् भक्ष्यभोज्यान्नपायसैः ॥ २१ ॥
षड्विधैश्च रसैस्तद्वत् समन्तात्परिपूजयेत् । बलिं दद्यात् प्रयत्नेन मन्त्रेणानेन भूरिशः ॥ २२ ॥
त्र्यम्बकं यजामह इति सर्वतः शनकैर्भुवि ।

तदनन्तर विद्वान् पुरुष—**'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते०'** इस मन्त्रका उच्चारण कर प्रतिमाको उठाये और **'आसूरजा०'** (वाजस० सं०) **'रथे तिष्ठ०'**—इन दो मन्त्रोंसे रथपर या ब्रह्मरथपर शिल्पियोंद्वारा रखवाकर ले

आवे और 'आकृष्णेन०' (वाजस० सं० ३३ । ४५) मन्त्रद्वारा मूर्तिको मन्दिरमें प्रवेश कराये तथा शय्यापर कुश तथा पुष्पोंको बिछाकर बुद्धिमान् पुरुष उसे पूर्वाभिमुख कर धीरेसे स्थापित करे । तदनन्तर वस्त्र और सुवर्णसहित निद्राकलशको देवताके सिरहानेकी ओर— 'आपो देवी०' (वही १२ । ३५) 'आपोऽस्मान् मातरः०'—(वाज० सं० ४ । २) इन मन्त्रोंको जपते हुए स्थापित कराना चाहिये । तत्पश्चात् रेशमी वस्त्र-द्वारा नेत्रोंको ढककर तकिया दे अथवा रेशमी वस्त्रको प्रतिमाके सिरके नीचे रख दे । फिर बैठकर मधु और घृतद्वारा स्नान कराकर तथा पीली सरसोंसे पूजाकर 'आप्यायस्व०' (वाजस० १२ । ११२) तथा 'या ते रुद्र शिवा तनू०' (वाजस० सं० १६ । २ । ४९) इन मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक चारों ओरसे चन्दन तथा पुष्पादिसे देवताकी पूजा करे। फिर 'बार्हस्पत्य०' (वही १७ । ३६) मन्त्रद्वारा श्वेत वर्णके सूतका बना हुआ कंगन अर्पित करे । तदनन्तर अनेक प्रकारके चित्र-विचित्र रेशमी अथवा सूती वस्त्रोंद्वारा प्रतिमाको भलीभाँति ढककर अगल-बगलमें छत्र, चामर, दर्पण आदि सामग्रियाँ रखे और पुष्पयुक्त चँदोवा स्थापित करे । वहीं विविध प्रकारसे रत्न, औषध, अन्य घरेलू वस्तुएँ, विचित्र प्रकारके पात्र, शय्या, आसन आदि सामग्रियाँ अपनी आर्थिक शक्तिके अनुरूप 'अभि त्वा शूर०' इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए रखे । फिर दूध, मधु, घृत, छहों प्रकारके रसों (खट्टा, मीठा, तीता, कड़वा, नमकीन, तथा कसैला)से संयुक्त भक्ष्य एवं भोज्य अन्न और खीरको भी चारों ओर रखकर पूजा करनी चाहिये । फिर 'त्र्यम्बकंयजामहे०' (वाजस० सं० ३ । ६०)—इस मन्त्रसे प्रचुर परिमाणमें प्रयत्नपूर्वक भूतलपर सब ओर घीसे बलि देनी चाहिये॥ ११—२२½॥

मूर्त्तिपान् स्थापयेत् पश्चात् सर्वदिक्षु विचक्षणः ॥ २३ ॥
चतुरो द्वारपालांश्च द्वारेषु विनिवेशयेत् । श्रीसूक्तं पावमानं च सोमसूक्तं सुमङ्गलम् ॥ २४ ॥
तथा च शान्तिकाध्यायमिन्द्रसूक्तं तथैव च । रक्षोघ्नं च तथा सूक्तं पूर्वतो बह्वृचो जपेत् ॥ २५ ॥
रौद्रं पुरुषसूक्तं च श्लोकाध्यायं सशुक्रियम् । तथैव मण्डलाध्यायमध्वर्युर्दक्षिणे जपेत् ॥ २६ ॥
वामदेव्यं बृहत्साम ज्येष्ठसाम रथन्तरम् । तथा पुरुषसूक्तं च रुद्रसूक्तं सशान्तिकम् ॥ २७ ॥
भारुण्डानि च सामानि च्छन्दोगः पश्चिमे जपेत् । अथर्वाङ्गिरसं तद्वन्नीलं रौद्रं तथैव च ॥ २८ ॥
तथापराजितादेवीसप्तसूक्तं सरौद्रकम् । तथैव शान्तिकाध्यायमथर्वा चोत्तरे जपेत् ॥ २९ ॥
शिरःस्थाने तु देवस्य स्थापको होममाचरेत् । शान्तिकैः पौष्टिकैस्तद्वन्मन्त्रैर्व्याहृतिपूर्वकैः ॥ ३० ॥
पलाशोदुम्बराश्वत्था अपामार्गः शमी तथा । हुत्वा सहस्रमेकैकं देवं पादे तु संस्पृशेत् ॥ ३१ ॥
ततो होमसहस्रेण हुत्वा हुत्वा ततस्ततः । नाभिमध्यं तथा वक्षः शिरश्चाप्यालभेत् पुनः ॥ ३२ ॥

तदनन्तर विद्वान् पुरुष सभी दिशाओंमें मूर्ति-रक्षकोंको नियुक्त करे तथा चारों द्वारोंपर चार द्वारपालों-को बैठा दे । फिर पूर्व दिशामें बैठकर बह्वृच् नामक ऋत्विज्को श्रीसूक्त पावमान, सुमङ्गलकारी सोमसूक्त, शान्तिकाध्याय, इन्द्रसूक्त तथा रक्षोघ्नसूक्त—इन ऋचाओं-का जप करना चाहिये । इसी प्रकार दक्षिण दिशामें बैठकर अध्वर्यु नामक ऋत्विज्को रौद्रसूक्त, पुरुषसूक्त, शुक्रियसहित श्लोकाध्याय तथा मण्डलाध्याय-का जप करना चाहिये । सामग नामक उद्गाता ऋत्विज्-को पश्चिम-दिशामें बैठकर वामदेव्य, बृहत्साम, ज्येष्ठसाम, रथन्तर, पुरुषसूक्त, शान्तिसहित रुद्रसूक्त तथा भारुण्ड सामका जप करना चाहिये । इसी प्रकार अथर्वा नामक ऋत्विज्को उत्तर दिशामें बैठकर अथर्वाङ्गिरस, नीलसूक्त, रौद्रसूक्तसहित अपराजिता तथा देवीसूक्तके सात मन्त्र और शान्तिकाध्याय (वा० ३७)का जप करना चाहिये । देवप्रतिमाके सिरहानेकी ओर स्थापकको व्याहृतिपूर्वक शान्तिक तथा पौष्टिक मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए हवन करना चाहिये । उस समय पलाश,

अग्नि० १३०-१३१—

गूलर, पीपल, अपामार्ग (चिड़चिड़ा), शमी—इन सबकी एक-एक हजार लकड़ियोंकी अग्निकुण्डमें मन्त्रद्वारा आहुति देते हुए देवताके पैरको स्पर्श किये रहना चाहिये। इसी प्रकार नाभि, वक्षःस्थल और शिरोभागको स्पर्श किये हुए प्रत्येक बार एक-एक सहस्र आहुति प्रदान करनी चाहिये ॥ २३-३२ ॥

हस्तमात्रेषु कुण्डेषु मूर्तिपाः सर्वतोदिशम्। समेखलेषु ते कुर्युर्योनिवक्त्रेषु चादरात् ॥ ३३ ॥
वितस्तिमात्रा योनिः स्याद् गजोष्ठसदृशी तथा। आयता छिद्रसंयुक्ता पार्श्वतः कलयोच्छ्रिता ॥ ३४ ॥
कुण्डात् कलानुसारेण सर्वतश्चतुरङ्गुला। विस्तारेणोच्छ्रया तद्वच्चतुरस्रा समा भवेत् ॥ ३५ ॥
वेदीभित्तिं परित्यज्य त्रयोदशभिरङ्गुलैः। एवं नवसु कुण्डेषु लक्षणं चैव दृश्यते ॥ ३६ ॥
आग्नेयशाक्रयाम्येषु होतव्यमुदगाननैः। शान्तये लोकपालेभ्यो मूर्तिभ्यः क्रमशस्तथा ॥ ३७ ॥
तथा मूर्त्यधिदेवानां होमं कुर्यात् समाहितः। वसुधा वसुरेताश्च यजमानो दिवाकरः ॥ ३८ ॥
जलं वायुस्तथा सोम आकाशश्चाष्टमः स्मृतः। देवस्य मूर्तयस्त्वष्टावेताः कुण्डेषु संस्मरेत् ॥ ३९ ॥
एतासामधिपान् वक्ष्ये पवित्रान् मूर्तिनामतः। पृथ्वीं पाति च शर्वश्च पशुपश्चाग्निमेव च ॥ ४० ॥
यजमानं तथैवोग्रो रुद्रश्चादित्यमेव च। भवो जलं सदा पाति वायुमीशान एव च ॥ ४१ ॥
महादेवस्तथा चन्द्रं भीमश्चाकाशमेव च। सर्वदेवप्रतिष्ठासु मूर्त्तिपा हूयेत एव च ॥ ४२ ॥
एतेभ्यो वैदिकैर्मन्त्रैर्यथास्वं होममाचरेत्।

इस प्रकार एक हाथके बने हुए मेखला एवं योनि-युक्त कुण्डमें सभी दिशाओंमें बैठे हुए मूर्तिस्थापकगण आदरपूर्वक हवन करें। कुण्डकी योनि एक बित्ता लम्बी, हाथीके ओठ या पीपलके पत्तेके समान आकारवाली होनी चाहिये। वह आयताकार, छिद्रयुक्त, कुण्डकी कलाके अनुसार दोनों बगल ऊँची, चौकोर और समतल होनी चाहिये। वेदीकी दीवालसे तेरह अंगुल दूर हटकर दूसरे अन्य नौ कुण्डोंको बनाना चाहिये। उनका भी लक्षण पूर्वोक्त प्रकारका समझना चाहिये।* होताओंको अग्निकोण, पूर्व दिशा तथा दक्षिण दिशामें उत्तरकी ओर मुखकर हवन करना चाहिये। शान्तिके लिये होता सावधान-चित्त हो लोकपालों, मूर्तियों तथा मूर्तियोंके अधिदेवताके लिये क्रमसे हवन करे। भूमि, अग्नि, यजमान, दिवाकर (सूर्य), जल, वायु, सोम तथा आठवाँ आकाश—ये आठ भगवान् शंकर (महादेव)की मूर्तियाँ हैं, हवनके समय इनका कुण्डमें स्मरण करना चाहिये। अब मैं मूर्तिके नामानुसार इनके रक्षक अधिपतियोंका वर्णन कर रहा हूँ। इनमें शर्व वसुधाकी, पशुपति वसुरेता (अग्नि)की, उग्र यजमानकी, रुद्र दिवाकरकी, भव जलकी, ईशान वायुकी, महादेव सोमकी और भीम आकाशकी मूर्तिरूपमें उनकी रक्षा करते हैं। सभी देवताओंकी प्रतिष्ठामें ये ही मूर्तिप माने गये हैं। इनके लिये अपनी सम्पत्तिके अनुकूल वैदिक मन्त्रोंद्वारा हवन करना चाहिये ॥ ३३-४२½ ॥

तथा शान्तिघटं कुर्यात् प्रतिकुण्डेषु सर्वदा ॥ ४३ ॥
शतान्ते वा सहस्रान्ते सम्पूर्णाहुतिरिष्यते। समपादः पृथिव्यां तु प्रशान्तात्मा विनिक्षिपेत् ॥ ४४ ॥
आहुतीनां तु सम्पातं पूर्णकुम्भेषु वै न्यसेत्। मूलमध्योत्तमाङ्गेषु देवं तेनावसेचयेत् ॥ ४५ ॥
स्थितं च स्नापयेत् तेन सम्पाताहुतिवारिणा। प्रतियामेषु धूपं तु नैवेद्यं चन्दनादिकम् ॥ ४६ ॥
पुनः पुनः प्रकुर्वीत होमः कार्यः पुनः पुनः। पुनः पुनश्च दातव्या यजमानेन दक्षिणा ॥ ४७ ॥
सितवस्त्रैश्च वै सर्वे पूजनीयाः समन्ततः। विचित्रैर्हेमकटकैर्हेमसूत्राङ्गुलीयकैः ॥ ४८ ॥

* मण्डप, कुण्ड, मेखला, योनि, वेदी आदिके निर्माणकी विस्तृत विधि कुण्डोद्योत, कुण्डमण्डपसिद्धि, गायत्री-पुरश्चरण-पद्धतिमें विस्तारसे तथा इस मत्स्यपुराणके पृष्ठ १८९ पर भी संक्षिप्तमें निर्दिष्ट है।

वासोभिः शयनीयैश्च प्रतियामे च शक्तितः। भोजनं चापि दातव्यं यावत् स्यादधिवासनम् ॥ ४९॥
बलिस्त्रिसंध्यं दातव्यो भूतेभ्यः सर्वतोदिशम्। ब्राह्मणान् भोजयेत् पूर्वं शेषान् वर्णांस्तु कामतः ॥ ५०॥
रात्रौ महोत्सवः कार्यो नृत्यगीतकमङ्गलैः। सदा पूज्याः प्रयत्नेन चतुर्थीकम यावता ॥ ५१॥
त्रिरात्रमेकरात्रं वा पञ्चरात्रमथापि वा।
सप्तरात्रमथो कुर्यात् क्वचित् सद्योऽधिवासनम्। सर्वयज्ञफलो यस्मादधिवासोत्सवः सदा ॥ ५२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽधिवासनविधिर्नाम पञ्चषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६५॥

प्रत्येक कुण्डपर सदा शान्तिघटकी स्थापना करनी चाहिये। सौ या सहस्र आहुतिके बाद सम्पूर्णाहुति मानी गयी है। उस समय पृथ्वीपर समानभावसे पैर रखे हुए होता शान्तचित्तसे सम्पूर्णाहुति छोड़ें। इन सभी आहुतियोंके सम्पातको पूर्ण कलशोंमें रखें। फिर उसीके जलसे प्रतिमाके पैर, मध्य एवं सिरका सेचन करे और उसी आहुतिके जलद्वारा वहाँके कल्पित देवतागणोंको स्नान कराये। प्रत्येक प्रहरमें पुनः-पुनः धूप, दीप, नैवेद्य, चन्दन आदि द्वारा पूजा करे तथा उसी प्रकार हवन भी बारंबार करना चाहिये। इसी प्रकार यजमानद्वारा पुनः-पुनः दक्षिणा भी प्रदान करनी चाहिये और उन सबको श्वेत वस्त्रद्वारा पूजा करनी चाहिये। प्रत्येक प्रहरमें यथाशक्ति अधिवासन-पर्यन्त विचित्र प्रकारके बने हुए सुवर्णके कङ्कण, सुवर्णकी जंजीर, अंगूठी, वस्त्र, शय्या और भोजन भी देना चाहिये। सामान्य जीवोंके लिये भी सभी दिशाओंमें तीनों संध्याओंके समय बलि भी देनी चाहिये। पहले ब्राह्मणोंको भोजन कराये, फिर अन्य वर्णवालोंको स्वेच्छानुसार भोजन कराना चाहिये। रातमें नाच-गान आदि मङ्गल-कार्योंद्वारा महोत्सव मनाना चाहिये। इस प्रकार चतुर्थीकर्मपर्यन्त सदा प्रयत्नपूर्वक पूजा करते रहना चाहिये। यह अधिवासन तीन रात, एक रात, पाँच रात या सात रातोंतक होता है। पर जहाँ अत्यन्त शीघ्रता हो, वहाँ तुरंत भी कर दिया जाता है। यह अधिवासोत्सव सर्वदा सम्पूर्ण यज्ञोंके फलोंको प्रदान करनेवाला है॥ ४३—५२ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अधिवासनविधि नामक दो सौ पैंसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २६५॥

दो सौ छाछठवाँ अध्याय

प्रतिमा-प्रतिष्ठाकी विधि

सूत उवाच

कृत्वाधिवासं देवानां शुभं कुर्यात् समाहितः। प्रासादस्यानुरूपेण मानं लिङ्गस्य वा पुनः ॥ १ ॥
पुष्पोदकेन प्रासादं प्रोक्ष्य मन्त्रयुतेन तु। पातयेत् पक्षसूत्रं तु द्वारसूत्रं तथैव च ॥ २ ॥
आश्रयेत् किंचिदीशानीं मध्यं ज्ञात्वा दिशं बुधः। ईशानीमाश्रितं देवं पूजयन्ति दिवौकसः ॥ ३ ॥
आयुरारोग्यफलदमथोत्तरसमाश्रितम्। शुभं स्यादशुभ प्रोक्तमन्यथा स्थापनं बुधैः ॥ ४ ॥
अधः कूर्मशिला प्रोक्ता सदा ब्रह्मशिलाधिका। उपर्यवस्थिता तस्या ब्रह्मभागाधिका शिला ॥ ५ ॥
ततस्तु पिण्डिका कार्या पूर्वोक्तैर्मानलक्षणैः। ततः प्रक्षालितां कृत्वा पञ्चगव्येन पिण्डिकाम् ॥ ६ ॥
कषायतोयेन पुनर्मन्त्रयुक्तेन सर्वतः। देवतार्चाश्रयं मन्त्रं पिण्डिकासु नियोजयेत् ॥ ७ ॥
तत उत्थाप्य देवेशमुत्तिष्ठ ब्रह्मणेति च। आनीय गर्भभवनं पीठान्ते स्थापयेत् पुनः ॥ ८ ॥
अर्घ्यपाद्यादिकं तत्र मधुपर्कं प्रयोजयेत्। ततो मुहूर्तं विश्रम्य रत्नन्यासं समाचरेत् ॥ ९ ॥
वज्रमौक्तिकवैदूर्यशङ्खस्फटिकमेव च। पुष्परागेन्द्रनीलं च नीलं पूर्वादिदिक्क्रमात् ॥ १०॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! इस प्रकार उपर्युक्त विधिसे देवताओंकी प्रतिमाका शुभ अधिवासन करना चाहिये । यजमानको एकाग्रचित्तसे प्रासादके अनुरूप लिङ्ग (प्रतिमा)का या लिङ्गके अनुरूप प्रासादका मान रखना चाहिये । लिङ्गस्थापनके पूर्व पुष्पमिश्रित जलसे मन्दिरको धोकर मन्त्रोच्चारण करते हुए पक्षसूत्र तथा द्वारसूत्रको* गिराकर नापना चाहिये । बुद्धिमान् पुरुषको देवमण्डपकी मध्यभूमिका निश्चय कर कुछ ईशानकोणकी ओर बढ़ना चाहिये; क्योंकि देवतागण ईशानकी दिशामें अवस्थित भगवान् शंकरकी पूजा करते हैं । उत्तर दिशामें अधिष्ठित देवता आयु तथा आरोग्यरूपी फल देनेवाले और कल्याणकारी कहे गये हैं । बुद्धिमानोंने इनके अतिरिक्त अन्य दिशाओंमें स्थापनाको अशुभकारी बताया है । लिङ्गके नीचे कूर्म-शिलाकी स्थापना करनी चाहिये । यह ब्रह्मशिलाकी अपेक्षा बड़ी तथा भारी होती है । उसके ऊपर ब्रह्मभागसे बड़ी ब्रह्मशिला स्थापित होती है । उसके ऊपर पूर्वोक्त परिमाणोंके अनुसार पिण्डिकाकी स्थापना करनी चाहिये । तत्पश्चात् पञ्चगव्यद्वारा पिण्डिकाको धोकर पुनः पञ्चकषाय†के जलसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक प्रक्षालन करे । पिण्डिकाओंमें भी देव-प्रतिमा-सम्बन्धी मन्त्रका प्रयोग करना चाहिये । तदुपरान्त **'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते०'** (वाजसने० ३४ । ५६) इस मन्त्रसे देव-प्रतिमाको उठाकर मण्डपके मध्यमें लाकर पुनः पीठिकापर स्थापित करे । वहाँ अर्घ्य, पाद्य और मधुपर्क आदि समर्पित करे । फिर एक मुहूर्ततक विश्रामकर वहाँ रत्नोंकी स्थापना करनी चाहिये । हीरा, मोती, विल्लौर, शङ्ख, स्फटिक, पुखराज, नीलम और महानील—इन रत्नोंको पूर्व दिशाके क्रमसे स्थापित करना चाहिये ॥ १—१० ॥

तालकं च शिलावज्रमञ्जनं श्याममेव च । काञ्ची काशी समाक्षीक गैरिकं चादितः क्रमात् ॥ ११ ॥
गोधूमं च यवं तद्वत् तिलमुद्गं तथैव च । नीवारमथ श्यामाकं सर्षपं व्रीहिमेव च ॥ १२ ॥
न्यस्य क्रमेण पूर्वादि चन्दनं रक्तचन्दनम् । अगरुं चाञ्जनं चापि उशीरं च ततः परम् ॥ १३ ॥
वैष्णवीं सहदेवीं च लक्ष्मणां च ततः परम् । स्वलोकपालनाम्ना तु न्यसेदोंकारपूर्वकम् ॥ १४ ॥
सर्वबीजानि धातूंश्च रत्नान्योषधयस्तथा । काञ्चनं पद्मरागं तु पारदं पद्ममेव च ॥ १५ ॥
कूर्मं धरां वृषं तत्र न्यसेत् पूर्वादितः क्रमात् । ब्रह्मस्थाने तु दातव्याः संहताः स्युः परस्परम् ॥ १६ ॥
कनकं विद्रुमं ताम्रं कांस्यं चैवारकूटकम् । रजतं विमलं पुष्पं लोहं चैव क्रमेण तु ॥ १७ ॥
काञ्चनं हरितालं च सर्वाभावेऽपि निक्षिपेत् । दद्याद् बीजौषधिस्थाने सहदेवीं यवानपि ॥ १८ ॥
न्यासमन्त्रानतो वक्ष्ये लोकपालात्मकानिह । इन्द्रस्तु सहसा दीप्तः सर्वदेवाधिपो महान् ॥ १९ ॥
वज्रहस्तो महासत्वस्तस्मै नित्यं नमो नमः । आग्नेयः पुरुषो रक्तः सर्वदेवमयः शिखी ॥ २० ॥
धूमकेतुरनाधृष्यस्तस्मै नित्यं नमो नमः । यमश्चोत्पलवर्णाभः किरीटी दण्डधृक् सदा ॥ २१ ॥
धर्मसाक्षी विशुद्धात्मा तस्मै नित्यं नमो नमः ।

फिर हरताल, शिलाजीत, अंजन, श्याम, कांजी, काशी, मधु और गेरू—इन सबको क्रमसे पूर्वादि दिशाओंमें रखना चाहिये । गेहूँ, जौ, तिल, मूँग, तीनी, साँवाँ, सरसों और चावल—इन सबको भी पूर्वादि दिशाके क्रमसे रखकर श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, अगुरु, अंजन, उशीर (खश), विष्णुक्रान्ता, सहदेई, तथा लक्ष्मणा (श्वेत कटहली)—इन्हें भी पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः उन-उन लोकपालोंके नामसे ओंकारपूर्वक स्थापित करना चाहिये । फिर सभी प्रकारके बीज, धातुएँ, रत्न, ओषधियाँ, सुवर्ण, पद्मराग, पारद, पद्म, कूर्म, पृथ्वी

* कारीगरका सूत्र । † जामुन, सेमल, बकुल, बेर और वटबीजके फलोंका क्वाथ पञ्चकषाय कहलाता है । (सुश्रुतसंहि न०, मो० वि०)

तथा वृषभ—इन्हें भी पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे स्थापित करना चाहिये । ब्रह्माके स्थानपर सभी वस्तुओंको परस्पर एकत्र करके रखना चाहिये । सुवर्ण, मूँगा, ताँबा, काँसा, पीतल, चाँदी, निर्मल पुष्प और लौह—इन सबको भी क्रमसे रखना चाहिये । इन सभी वस्तुओंके अभावमें सुवर्ण और हरितालको भी रखा जा सकता है । बीज और ओषधिके स्थानपर सहदेवी और जौ रखा जा सकता है । अब मैं न्यास करनेके लिये प्रत्येक लोकपालके क्रमसे मन्त्रोंको बतला रहा हूँ । पूर्व दिशाके स्वामी महान् दीप्तिशाली, सभी देवताओंके अधिपति वज्रधारी महापराक्रमी इन्द्र हैं, उन्हें नित्य बारंबार नमस्कार है । अग्निकोणमें स्थित पुरुष अग्निदेव लाल वर्णवाले, सर्वदेवमय, धूमकेतु और दुर्जय हैं, उन्हें नित्य बारंबार प्रणाम है । दक्षिण दिशाके स्वामी यमराजका वर्ण कमलके समान है । वे सिरपर किरीट तथा हाथमें सदा दण्ड धारण करनेवाले, धर्मके साक्षी और विशुद्धात्मा हैं, उन्हें नित्य बारंबार अभिवादन है ॥ ११–२१½ ॥

निर्ऋतिस्तु पुमान् कृष्णः सर्वरक्षोऽधिपो महान् ॥ २२ ॥
खड्गहस्तो महासत्त्वस्तस्मै नित्यं नमो नमः । वरुणो धवलो जिष्णुः पुरुषो निम्नगाधिपः ॥ २३ ॥
पाशहस्तो महाबाहुस्तस्मै नित्यं नमो नमः । वायुश्च सर्ववर्णो वै सर्वगन्धवहः शुभः ॥ २४ ॥
पुरुषो ध्वजहस्तश्च तस्मै नित्यं नमो नमः । गौरो यश्च पुमान् सौम्यः सर्वौषधिसमन्वितः ॥ २५ ॥
नक्षत्राधिपतिः सोमस्तस्मै नित्यं नमो नमः । ईशानपुरुषः शुक्लः सर्वविद्याधिपो महान् ॥ २६ ॥
शूलहस्तो विरूपाक्षस्तस्मै नित्यं नमो नमः । पद्मयोनिश्चतुर्मूर्तिर्वेदवासाः पितामहः ॥ २७ ॥
यज्ञाध्यक्षश्चतुर्वक्त्रस्तस्मै नित्यं नमो नमः । योऽसावनन्तरूपेण ब्रह्माण्डं सचराचरम् ॥ २८ ॥
पुष्पवद् धारयेन्मूर्ध्नि तस्मै नित्यं नमो नमः । ओङ्कारपूर्वका ह्येते न्यासे बलिनिवेदने ॥ २९ ॥
मन्त्राः स्युः सर्वकार्याणां वृद्धिपुत्रफलप्रदाः । न्यासं कृत्वा तु मन्त्राणां पायसेनानुलेपितम् ॥ ३० ॥
पटेनाच्छादयेच्छ्वभ्रं शुक्लेनोपरि यत्नतः । तत उत्थाप्य देवेशमिष्टदेशे तु शोभने ॥ ३१ ॥
ध्रुवा द्यौरिति मन्त्रेण श्वभ्रोपरि निवेशयेत् । ततः स्थिरीकृतस्यास्य हस्तं दत्त्वा तु मस्तके ॥ ३२ ॥
ध्यात्वा परमसद्भावाद् देवदेवं च निष्कलम् । देवव्रतं तथा सोमं रुद्रसूक्तं तथैव च ॥ ३३ ॥
आत्मानमीश्वरं कृत्वा नानाभरणभूषितम् । यस्य देवस्य यद्रूपं तद्ध्याने संस्मरेत् तथा ॥ ३४ ॥

नैर्ऋत्यकोणके स्वामी निर्ऋति (यातुधान) कृष्णवर्णवाले, महान् पुरुष, सम्पूर्ण राक्षसोंके अधिपति, खड्गधारी और महान् पराक्रमी हैं, उन्हें नित्य बारंबार नमस्कार है । पश्चिमके स्वामी वरुणदेव श्वेत वर्णवाले, विजेतास्वरूप, नदियोंके स्वामी, पाशधारी और महाबाहु हैं, उन्हें नित्य बारंबार प्रणाम है । वायव्यकोणके स्वामी वायुदेवता सब प्रकारके वर्णवाले, सभी प्रकारके गन्धको धारण करनेवाले और ध्वजाधारी हैं, उन्हें नित्य बारंबार अभिवादन है । उत्तरके स्वामी सोमदेव गौरवर्णवाले, सौम्य आकृतिसे युक्त, सभी ओषधियोंसे समन्वित तथा नक्षत्रोंके अधिपति हैं, उन्हें नित्य बारंबार नमस्कार है । ईशानकोणके स्वामी ईशान-(महा-)देव शुक्ल वर्णवाले, समस्त विद्याओंके अधिपति, महान् शूलधारी और विरूपाक्ष हैं, उन्हें नित्य बारंबार प्रणाम है । ऊर्ध्व (ऊपरकी) दिशाके स्वामी पद्मयोनि ब्रह्मा, वेदरूपी वस्त्रसे सुशोभित, यज्ञाध्यक्ष, चार मुखवाले, पितामह हैं, उन्हें नित्य बारंबार अभिवादन है । ये जो अनन्तरूपसे निखिल चराचर ब्रह्माण्डको पुष्पकी भाँति अपने मस्तकपर धारण करते हैं, (नीचेकी दिशाके स्वामी) उन शेषको नित्य बारंबार नमस्कार है । इन मन्त्रोंको न्यास करते तथा बलि देते समय ॐकारपूर्वक उच्चारण करना

चाहिये। ये सभी कार्योंमें समृद्धि तथा पुत्ररूपी फल देनेवाले हैं। इस प्रकार मन्त्रोंका न्यास कर घृतसे अनुलिप्त गर्तको श्वेत वस्त्रद्वारा यत्नपूर्वक ऊपरसे आच्छादित कर दे। तदनन्तर देवेशको उठाकर सुन्दर इष्ट देशमें 'ध्रुवा द्यौः०'-(आथर्वण) इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए गर्तपर स्थापित कर दे। फिर उसे स्थिर करके उसके मस्तकपर हाथ रखकर अपनेको नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित परब्रह्मका अंश मानकर परम सद्भावपूर्वक निष्कल देवदेवेश्वरका ध्यान करके सोमसूक्त तथा 'रुद्रसूक्त'का पाठ करे। ध्यानके समय जिस देवताका जैसा स्वरूप हो, वैसा ही उसका स्मरण करना चाहिये ॥ २२–३४ ॥

अतसीपुष्पसंकाशं शङ्खचक्रगदाधरम्। संस्थापयामि देवेशं देवो भूत्वा जनार्दनम् ॥ ३५ ॥
अक्षरं च दशबाहुं च चन्द्रार्धकृतशेखरम्। गणेशं वृषसंस्थं च स्थापयामि त्रिलोचनम् ॥ ३६ ॥
ऋषिभिः संस्तुतं देवं चतुर्वक्त्रं जटाधरम्। पितामहं महाबाहुं स्थापयाम्यम्बुजोद्भवम् ॥ ३७ ॥
सहस्रकिरणं शान्तमप्सरोगणसंयुतम्। पद्महस्तं महाबाहुं स्थापयामि दिवाकरम् ॥ ३८ ॥
देवमन्त्रांस्तथा रौद्रान् रुद्रस्य स्थापने जपेत्। विष्णोस्तु वैष्णवांस्तद्वद् ब्राह्मान् वै ब्रह्मणो बुधः ॥ ३९ ॥
सौराः सूर्यस्य जप्तव्यास्तथान्येषु तदाश्रयाः। वेदमन्त्रप्रतिष्ठा तु यस्मादानन्ददायिनी ॥ ४० ॥
स्थापयेद् यं तु देवेशं तं प्रधानं प्रकल्पयेत्। तस्य पार्श्वस्थितानन्यान् संस्मरेत् परिवारितः ॥ ४१ ॥
गणं नन्दिमहाकालं वृषं भृङ्गिरिटिं गुहम्। देवीं विनायकं चैव विष्णुं ब्रह्माणमेव च ॥ ४२ ॥
रुद्रं शक्रं जयन्तं च लोकपालान् समंततः। तथैवाप्सरसः सर्वा गन्धर्वगणगुह्यकान् ॥ ४३ ॥
यो यत्र स्थाप्यते देवस्तस्य तान् परितः स्मरेत्।

मैं देवरूप होकर अलसी-पुष्पके समान कान्तिवाले तथा शङ्ख, चक्र और गदाधारी देवेश जनार्दनको स्थापित कर रहा हूँ। इसी प्रकार मैं अविनाशी, दस बाहुओंसे सुशोभित, सिरपर अर्धचन्द्र धारण करनेवाले, गणोंके स्वामी, वृषभारूढ, त्रिनेत्रधारी शिवको स्थापित कर रहा हूँ। मैं ऋषियोंद्वारा संस्तुत, चार मुखवाले, जटाधारी, महाबाहु, कमलोद्भव ब्रह्मदेवकी स्थापना कर रहा हूँ। मैं सहस्र किरणोंसे सुशोभित, शान्त, अप्सरा-समूहसे संयुक्त, पद्महस्त, महाबाहु सूर्यकी स्थापना कर रहा हूँ। बुद्धिमान् पुरुषको रुद्रकी स्थापनामें रौद्र मन्त्रोंका, विष्णुकी स्थापनामें वैष्णव मन्त्रोंका, ब्रह्माकी स्थापनामें ब्राह्म मन्त्रोंका तथा सूर्यकी स्थापनामें सूर्यदेवताके मन्त्रोंका जप करना चाहिये। इसी प्रकार अन्य देवताओंकी स्थापनामें उन्हींके मन्त्रोंका जप करना चाहिये; क्योंकि वेदमन्त्रोच्चारणपूर्वक की गयी प्रतिष्ठा आनन्ददायिनी होती है। जिन देवताकी प्रतिमा स्थापित की जाती है, उन्हींको प्रधान मानना चाहिये। उनके अगल-बगलमें स्थित अन्य देवताओंको उनके परिकररूपमें समझना चाहिये। गण, नन्दिकेश्वर, महाकाल, वृषभ, भृङ्गिरिटि, स्वामिकार्तिक, देवी, विनायक, विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, जयन्त, लोकपाल, अप्सराओंके समूह, गन्धर्वोंके समूह और गुह्यकोंको शिवके अथवा जो देवता जिस स्थानपर स्थापित किया गया हो, उसके चारों ओर स्थापित करना चाहिये ॥ ३५–४३½ ॥

आवाहयेत् तथा रुद्रं मन्त्रेणानेन यत्नतः ॥ ४४ ॥
यस्य सिंहा रथे युक्ता व्याघ्रभूतास्तथोरगाः। ऋषयो लोकपालाश्च देवः स्कन्दस्तथा वृषः ॥ ४५ ॥
प्रियो गणो मातरश्च सोमो विष्णुः पितामहः। नागा यक्षाः सगन्धर्वा ये च दिव्या नभश्चराः ॥ ४६ ॥
तमहं त्र्यक्षमीशानं शिवं रुद्रमुमापतिम्। आवाहयामि सगणं सपत्नीकं वृषध्वजम् ॥ ४७ ॥
आगच्छ भगवन् रुद्रानुग्रहाय शिवो भव। शाश्वतो भव पूजां मे गृहाण त्वं नमो नमः ॥ ४८ ॥
ओं नमः स्वागतं भगवते नमः, ओं नमः सोमाय सगणाय सपरिवाराय प्रतिगृह्णातु भगवन्मन्त्रपूतमिदं सवमर्घ्यपाद्यमाचमनीयमासनं ब्रह्मणाभिहितं नमो नमः स्वाहा ॥ ४९ ॥

ततः पुण्याहघोषेण ब्रह्मघोषैश्च पुष्कलैः। स्नापयेत् तु ततो देवं दधिक्षीरघृतेन च ॥ ५० ॥
मधुशर्करया तद्वत् पुष्पगन्धोदकेन च। शिवध्यानैकचित्तस्तु मन्त्रानेतानुदीरयेत् ॥ ५१ ॥
यज्जाग्रतो दूरमुदेति ततो विराडजायत इति च। सहस्रशीर्षा पुरुष इति च। अभि त्वा शूर नो नुम इति च। पुरुष एवेदं सर्वंत्रिपादूर्ध्वमिति च। येनेदं भूतमिति नत्वा वाँ अन्य इति ॥ ५२ ॥
सर्वांश्चैतान् प्रतिष्ठासु मन्त्रान् जप्त्वा पुनः पुनः। चतुःकृत्वः स्पृशेदद्भिर्मूले मध्ये शिरस्यपि ॥ ५३ ॥
स्थापिते तु ततो देवे यजमानोऽथ मूर्तिपम्। आचार्यं पूजयेद् भक्त्या वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥ ५४ ॥
दीनान्धकृपणांस्तद्वद् ये चान्ये समुपस्थिताः। ततस्तु मधुना देवं प्रथमेऽहनि लेपयेत् ॥ ५५ ॥
हरिद्रयाथ सिद्धार्थैर्द्वितीयेऽहनि तत्त्वतः। चन्दनेन यवैस्तद्वत् तृतीयेऽहनि लेपयेत् ॥ ५६ ॥
मनःशिलाप्रियङ्गुभ्यां चतुर्थेऽहनि लेपयेत्। सौभाग्यशुभदं यस्माल्लेपनं व्याधिनाशनम् ॥ ५७ ॥
परं प्रीतिकरं नृणामेतद् वेदविदो विदुः।

फिर इस निम्नाङ्कित मन्त्रद्वारा यत्नपूर्वक रुद्रका आवाहन करना चाहिये—'जिनके रथमें सिंह, व्याघ्र, नाग, ऋषिगण, लोकपाल-वृन्द, देव, स्कन्द, वृष, प्रिय प्रमथगण, मातृकाएँ, चन्द्रमा, विष्णु, ब्रह्मा, सर्प, यक्ष, गन्धर्व, दिव्य आकाशचारी जीव जुते हुए हैं, उन तीन नेत्रोंवाले, ईशान, वृषध्वज, रुद्र, उमापति शिवको मैं गणों तथा पत्नीसहित आवाहन कर रहा हूँ। भगवन् रुद्र! अनुग्रह करनेके लिये आइये, कल्याणकारी होइये, शाश्वतरूपसे स्थित होइये और मेरी पूजाको ग्रहण कीजिये, आपको बारंबार नमस्कार है। मन्त्र इस प्रकार है—ॐ नमः स्वागतं भगवते नमः, ॐ नमः सोमाय सगणाय सपरिवाराय प्रतिगृह्णातु भगवन् मन्त्रपूतमिदं सर्वमर्घ्यपाद्यमाचमनीयमासनं ब्रह्मणाभिहितं नमो नमः स्वाहा।' 'अर्थात्' 'ॐ भगवन्! आपका स्वागत है और आपको बारंबार नमस्कार है। ॐ गण और परिवारसहित सोमको प्रणाम है। भगवन्! आप मन्त्रद्वारा पवित्र किया हुआ तथा ब्रह्माद्वारा अभिनन्दित इस सकल अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय और आसनको ग्रहण कीजिये। आपको बारंबार अभिवादन है। मेरे सभी पाप जल जायँ।' तदनन्तर पुण्याहवाचन एवं प्रचुर वेदध्वनिके साथ मूर्तिको दधि, क्षीर, घृत, मधु और शक्करसे स्नान कराकर पुनः पुष्प एवं सुगन्धमिश्रित जलसे स्नान कराये। उस समय एकाग्रचित्तसे भगवान् शिवका ध्यान करते हुए इन मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये। वे मन्त्र इस प्रकार हैं—'यज्जाग्रतो दूरमुदेति०'–,'ततो विराड-जायत०–','सहस्रशीर्षा पुरुषः०–','अभि त्वा शूर नो नुम','पुरुष एवेदं सर्वम्०–','त्रिपादूर्ध्वम्०–', 'येनेदं भूतम्०–', 'नत्वा वाँ अन्य०–' इति। (वाजस० सं० ३१) प्रतिष्ठासम्बन्धी कार्योंमें इन उपर्युक्त सभी मन्त्रोंको बारंबार जप करके चार बार जलसे प्रतिमाके मूल-भाग, मध्यभाग तथा शिरोभागमें स्पर्श करे। इस प्रकार देवके स्थापित हो जानेपर यजमान मूर्तिकी प्रतिष्ठा करानेवाले आचार्यकी वस्त्र, अलंकार एवं आभूषणोंसे भक्तिपूर्वक पूजा करे। इसी प्रकार दीन, अन्धे, कृपण तथा अन्य जो कोई वहाँ उपस्थित हों, उन सबको भी संतुष्ट करना चाहिये। तदनन्तर प्रथम दिन मधुसे प्रतिमाका लेपन करना चाहिये। इसी तरह दूसरे दिन हल्दी तथा सरसोंसे, तीसरे दिन चन्दन और जौसे, चौथे दिन मैनसिल तथा प्रियङ्गु (मेंहदी)से लेप करना चाहिये; क्योंकि यह लेप सौभाग्य और मङ्गलदायक, व्याधिनाशक तथा मनुष्योंके लिये परम प्रीतिकारक है, ऐसा वेद-वेत्ताओंने कहा है ॥ ४७–५७½ ॥

कृष्णाञ्जनं तिलं तद्वत् पञ्चमेऽपि निवेदयेत् ॥ ५८ ॥
षष्ठे तु सघृतं दद्याच्चन्दनं पद्मकेसरम्। रोचनागुरुपुष्पं तु सप्तमेऽहनि दापयेत् ॥ ५९ ॥
यत्र सद्योऽधिवासः स्यात् तत्र सर्वं निवेदयेत्। स्थितं न चालयेद् देवमन्यथा दोषभाग् भवेत् ॥ ६० ॥

पूरयेत् सिकताभिस्तु निरिछद्रं सर्वतो भवेत्। लोकपालस्य दिग्भागे यस्य संचलते विभुः ॥ ६१ ॥
तस्य लोकपतेः शान्तिर्देयाश्चेमाश्च दक्षिणाः। इन्द्राय वारणं दद्यात् काञ्चनं चाल्पवित्तवान् ॥ ६२ ॥
अग्नेः सुवर्णमेव स्याद् यमस्य महिषं तथा। अजं च काञ्चनं दद्यान्नैर्ऋतं राक्षसं प्रति ॥ ६३ ॥
वरुणं प्रति मुक्तानि सशुक्तीनि प्रदापयेत्। रीतिकं वायवे दद्याद् वस्त्रयुग्मेन साम्प्रतम् ॥ ६४ ॥
सोमाय धेनुर्दातव्या राजतं वृषभं शिवे। यस्यां यस्यां सञ्चलनं शान्तिः स्यात् तत्र तत्र तु ॥ ६५ ॥
अन्यथा तु भवेद् घोरं भयं कुलविनाशनम्। अचलं कारयेत् तस्मात् सिकताभिः सुरेश्वरम् ॥ ६६ ॥
अन्नं वस्त्रं च दातव्यं पुण्याहजयमङ्गलम्। त्रिपञ्च सप्तदश वा दिनानि स्यान्महोत्सवः ॥ ६७ ॥
चतुर्थेऽह्नि महास्नानं चतुर्थीकर्म कारयेत्। दक्षिणा च पुनस्तद्वद् देया तत्रातिभक्तितः ॥ ६८ ॥
देवप्रतिष्ठाविधिरेष तुभ्यं निवेदितः पापविनाशहेतोः।
यस्माद् बुधैः पूर्वमनन्तमुक्तमनेकविद्याधरदेवपूज्यम् ॥ ६९ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रतिष्ठानुकीर्तनं नाम षट्षष्टयधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६६ ॥

इसी प्रकार पाँचवें दिन काला अंजन और तिल, छठे दिन घृतसहित चन्दन एवं पद्मकेसर, सातवें दिन रोचना, अगुरु तथा पुष्प देना चाहिये। जिस मूर्तिकी स्थापनामें तुरंत ही अधिवासन हो जाय, वहाँ इन सबको एक साथ ही निवेदित कर देना चाहिये। अवस्थित हो जानेपर प्रतिमाको अपने स्थानसे विचलित नहीं करना चाहिये; अन्यथा दोषभागी होना पड़ता है। छिद्रोंको बालूसे भरकर सब ओर छिद्ररहित कर देना चाहिये। स्थापनाके बाद जिस लोकपालकी दिशाकी ओर प्रतिमा अपने-आप झुकती है, उस लोकपालके लिये शान्ति कराकर क्रमशः ये दक्षिणाएँ देनी चाहिये। इन्द्रके लिये हाथी देना चाहिये। यदि थोड़ी सम्पत्तिवाला हो तो सुवर्ण दे। अग्निके लिये सुवर्णकी, यमराजके लिये महिषकी, राक्षसराज निर्ऋतिके लिये बकरा तथा सुवर्णकी, वरुणके लिये सुतुहियोंसहित मोतियोंकी, वायुके लिये दो वस्त्रोंसहित पीतलकी, चन्द्रमाके लिये गौकी और शिवके लिये चाँदी-निर्मित वृषभकी दक्षिणा देनी चाहिये। जिस-जिस दिशामें संचलन हो, उस-उस दिशाकी शान्ति करानी चाहिये, अन्यथा कुलविनाशक भयंकर भय उत्पन्न होता है। अतः प्रतिमाको बालूसे भरकर अचल कर देना चाहिये। उक्त पुण्य दिनमें अन्न तथा वस्त्रका दान करना चाहिये। साथ ही पुण्याहवाचन, जय-जयकार एवं माङ्गलिक शब्दोंका उच्चारण करवाना चाहिये। यह महोत्सव तीन, पाँच, सात या दस दिनोंतक होना चाहिये। प्रतिष्ठाके चौथे दिन महास्नान तथा चतुर्थी कर्म कराना चाहिये। उस अवसरपर भी अत्यन्त भक्तिपूर्वक पर्याप्त दक्षिणा देनी चाहिये। ऋषिवृन्द! मैंने पापोंके विनाशार्थ आपलोगोंसे देव-प्रतिमाकी प्रतिष्ठाकी यह विधि वर्णन की है; क्योंकि पण्डितोंने इस विषयको पूर्वकालमें अनेक विद्याधर तथा देवताओंद्वारा पूज्य और अनन्त बतलाया है॥५८—६९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें मूर्तिप्रतिष्ठा नामक दो सौ छाछठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २६६॥

दो सौ सड़सठवाँ अध्याय

देव- (प्रतिमा-) प्रतिष्ठाके अङ्गभूत अभिषेक-स्नानका निरूपण

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि देवस्नपनमुत्तमम्। अधस्यापि समासेन शृणु त्वं विधिमुत्तमम् ॥ १ ॥
दध्यक्षतकुशाग्राणि क्षीरं दूर्वास्तथा मधु। यवाः सिद्धार्थकास्तद्वदष्टाङ्गोऽर्घः फलैः सह ॥ २ ॥

गजाश्वरथ्यावल्मीकवराहोत्खातमण्डलात् । अग्न्यागारात् तथा तीर्थाद् व्रजाद् गोमण्डलादपि ॥ ३ ॥
कुम्भे तु मृत्तिकां दद्यादुद्धृतासीति मन्त्रवित् । शं नो देवीत्यपां मन्त्रमापो हिष्ठेति वै तथा ॥ ४ ॥
सावित्र्याऽऽदाय गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् । आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि ॥ ५ ॥
तेजोऽसीति घृतं तद्वद् देवस्य त्वेति चोदकम् । कुशमिश्रं क्षिपेद् विद्वान् पञ्चगव्यं भवेत् ततः ॥ ६ ॥
स्नाप्याथ पञ्चगव्येन दध्ना शुद्धेन वै ततः । दधिक्राव्णेति मन्त्रेण कर्तव्यमभिमन्त्रणम् ॥ ७ ॥
आप्यायस्वेति पयसा तेजोऽसीति घृतेन च । मधुवातेति मधुना ततः पुष्पोदकेन च ॥ ८ ॥
सरस्वत्यै भैषज्येन कार्यं तस्याभिमन्त्रणम् । हिरण्याक्षेति मन्त्रेण स्नापयेद् रत्नवारिणा ॥ ९ ॥
कुशाम्भसा ततः स्नानं देवस्यत्वेति कारयेत् । फलोदकेन च स्नानमग्न आयाहि कारयेत् ॥ १० ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! अब मैं देवप्रतिमाके अभिषेक तथा अर्घ्यकी उत्तम विधि संक्षेपमें बतला रहा हूँ, सुनिये। दधि, अक्षत, कुशाका अग्रभाग, दुग्ध, दूर्वा, मधु, यव और सरसो—इन आठ वस्तुओं तथा फलोंके मिलानेसे अर्घ बनता है। हाथीशाला, अश्वशाला, चौराहा, बिमौट, शूकरद्वारा खोदे गये गड्ढे, अग्निकुण्ड, तीर्थस्थान एवं गोशालाकी मिट्टीको मन्त्रवेत्ता ब्राह्मण **'उद्धृतासि वराहेण'** (तै० आर०) आदि मन्त्रको उच्चारण करते हुए कलशमें डाले। तत्पश्चात् **'शं नो देवी०'** (वाजस० सं० ३६।१०) **'आपो हि ष्ठा०'** इन दो मन्त्रोंका उच्चारण कर जल छोड़े। तत्पश्चात् गायत्री-मन्त्रका उच्चारण करते हुए उस घड़ेमें गोमूत्र, फिर **'गन्धद्वारां०'** (ऋक्परि० श्रीसू० ८) इस मन्त्रसे गोबर, **'आप्यायस्व०'** (वाजस० सं० १२।१४४) मन्त्रसे दुग्ध, **'दधिक्राव्णः०'** (वाजस० २३।३२) मन्त्रसे दही और **'तेजोऽसि०'** (वाजस० २२।१) मन्त्रसे घृत, **'देवस्य त्वा सवितुः०'** (वाजस० सं० १।१९)से जलको छोड़कर सबको मिश्रितकर कुशाद्वारा चलावे तो वह पञ्चगव्य होता है। इस पञ्चगव्यद्वारा प्रतिमाको स्नान करानेके उपरान्त शुद्ध दहीद्वारा **'दधिक्राव्णः०'** (वाजस० सं० २३।३२) इस मन्त्रसे अभिषेक-संस्कार करना चाहिये। फिर **'आप्यायस्व०'**(वाजस० सं० १२।११४) इस मन्त्रका उच्चारण कर दुग्धसे, **'तेजोऽसि शुक्र०'** (वाजस० सं० २२।१) इस मन्त्रद्वारा घृतसे, **'मधुवाता०'** (वाजस० सं०) इस मन्त्रद्वारा मधुसे तथा पुष्पमिश्रित जलसे और **'सरस्वत्यै०'** (वाजस० सं०) इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए ओषधियोंसे प्रतिमाका संस्कार करना चाहिये। फिर **'हिरण्याक्ष०'** इस मन्त्रसे रत्नमिश्रित जलसे, **'देवस्य त्वा०'** (वाजस० सं० १।१०) इस मन्त्रका उच्चारण कर कुशोदकसे तथा **'अग्न आयाहि०'** (साम० सं० १।१) इस मन्त्रका उच्चारण कर प्रतिमाको स्नान करावे ॥ १—१० ॥

ततस्तु गन्धतोयेन सावित्र्या चाभिमन्त्रयेत् । ततो घटसहस्रेण सहस्रार्धेन वा पुनः ॥ ११ ॥
तस्याप्यर्धेन वा कुर्यात् सपादेन शतेन वा । चतुःषष्ट्या ततोऽर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः ॥ १२ ॥
चतुर्भिरथवा कुर्याद् घटानामल्पवित्तवान् । सौवर्णै राजतैर्वापि ताम्रैर्वा रीतिकोद्भवैः ॥ १३ ॥
कांस्यैर्वा पार्थिवैर्वापि स्नपनं शक्तितो भवेत् । सहदेवी वचा व्याघ्री बला चातिबला तथा ॥ १४ ॥
शङ्खपुष्पी तथा सिंही ह्यष्टमी च सुवर्चला । महौषध्यष्टकं ह्येतन्महास्नानेषु योजयेत् ॥ १५ ॥
यवगोधूमनीवारतिलश्यामाकशालयः । प्रियङ्गवो व्रीहयश्च स्नानेषु परिकल्पिताः ॥ १६ ॥
स्वस्तिकं पद्मकं शङ्खमुत्पलं कमलं तथा । श्रीवत्सं दर्पणं तद्वन्नन्द्यावर्तमथाष्टकम् ॥ १७ ॥
एतानि गोमयैः कुर्यान्मृदा च शुभया ततः । पञ्चवर्णादिकं तद्वत् पञ्चवर्णं रजस्तथा ॥ १८ ॥
दूर्वाः कृष्णतिलान् दद्यान्नीराजनविधिर्मतः । एवं नीराजनं कृत्वा दद्यादाचमनं बुधः ॥ १९ ॥
मन्दाकिन्यास्तु यद्वारि सर्वपापापहं शुभम् । ततो वस्त्रयुगं दद्यान्मन्त्रेणानेन यत्नतः ॥ २० ॥

देवसूत्रसमायुक्ते यज्ञदानसमन्विते । सर्ववर्णे शुभे देव वाससी ते विनिर्मिते ॥ २१ ॥
ततस्तु चन्दनं दद्यात् समं कर्पूरकुङ्कुमैः । इममुच्चारयेन्मन्त्रं दीर्घपाणिः प्रयत्नतः ॥ २२ ॥
शरीरं ते न जानामि चेष्टां नैव च नैव च । मया निवेदितान् गन्धान् प्रतिगृह्य विलिप्यताम् ॥ २३ ॥

इसके बाद गायत्री-मन्त्रद्वारा सुगन्धित जलसे अभिमन्त्रित करे। फिर एक हजार या पाँच सौ या उसके आधे ढाई सौ या एक सौ पचीस या एक सौ या चौंसठ या उसके आधे बत्तीस या उसके आधे सोलह या आठ या अल्प वित्तवाला पुरुष चार कलशोंसे स्नान-क्रिया सम्पन्न करे। ये कलश यथाशक्ति सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, पीतल, काँसा या मिट्टीके बने होने चाहिये। सहदेई, वच, व्याघ्री, बला, अतिबला, शङ्ख-पुष्पी, सिंही तथा आठवीं सुवर्चला—ये महौषधियाँ हैं, इनका महास्नानके समय प्रयोग करना चाहिये। जौ, गेहूँ, तिन्नी, तिल, साँवा, धान, प्रियङ्गु तथा चावल—ये अन्न भी स्नानकार्यमें उपयोगी कहे गये हैं। स्वस्तिक, पद्म, शङ्ख, उत्पल, कमल, श्रीवत्स, दर्पण और नन्द्यावर्त—इन आठ चित्रोंकी गोबर और शुद्ध मिट्टीसे कलापूर्ण रचना करें फिर उन्हें पाँच प्रकारके रंग, पाँच प्रकारके चूर्ण, दूर्वा और काला तिलसे भर दे। तत्पश्चात् नीराजन—आरतीकी विधिसे नीराजन कर बुद्धिमान् पुरुष 'गङ्गाका जल सभी पापोंका विनाशक और शुभदायक होता है' इस भावके मन्त्रसे आचमन करावे। तदनन्तर—'देव! आपके लिये बने हुए ये युगल वस्त्र देवनिर्मित सूत्रद्वारा बने हुए, यज्ञ तथा दानसे समन्वित, विविध वर्णोंवाले एवं परम रमणीय हैं, इन्हें आप ग्रहण करें,' इस भावके मन्त्रका उच्चारण करते हुए यत्नपूर्वक दो वस्त्र समर्पित करे। इसके बाद हाथमें कुश लेकर प्रयत्नपूर्वक निम्नलिखित मन्त्रका उच्चारण करते हुए कपूर और केसरमिश्रित चन्दन लगाना चाहिये। मन्त्र इस प्रकार है—'देव! मैं आपके शरीर और चेष्टाको किसी प्रकार भी नहीं जानता, अतः मेरेद्वारा समर्पित किये गये गन्धोंको ग्रहणकर आप स्वयं ही अनुलेपन कर लें' ॥ ११–२३ ॥

चत्वारिंशत् ततो दीपान् दद्याच्चैव प्रदक्षिणान् । त्वं सूर्यचन्द्रज्योतींषि विद्युदग्निस्तथैव च ॥ २४ ॥
त्वमेव सर्वज्योतींषि दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् । ततस्त्वनेन मन्त्रेण धूपं दद्याद् विचक्षणः ॥ २५ ॥
वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः । मया निवेदितो भक्त्या धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ २६ ॥
ततस्त्वाभरणं दद्यान्महाभूषाय ते नमः । अनेन विधिना कृत्वा सप्तरात्रं महोत्सवम् ॥ २७ ॥
देवकुम्भैस्ततः कुर्याद् यजमानोऽभिषेचनम् । चतुर्भिरष्टभिर्वापि द्वाभ्यामेकेन वा पुनः ॥ २८ ॥
सपञ्चरत्नकलशैः सितवस्त्राभिवेष्टितैः । देवस्य त्वेति मन्त्रेण साम्ना चाथर्वणेन च ॥ २९ ॥
अभिषेके च ये मन्त्रा नवग्रहमखे स्मृताः । सिताम्बरधरः स्नात्वा देवान् सम्पूज्य यत्नतः ॥ ३० ॥
स्थापकं पूजयेद् भक्त्या वस्त्रालङ्कारभूषणैः । यज्ञभाण्डानि सर्वाणि मण्डपोपस्करादिकम् ॥ ३१ ॥
यच्चान्यदपि तद्गेहे तदाचार्याय दापयेत् । सुप्रसन्ने गुरौ यस्मात् तृप्यन्ति सर्वदेवताः ॥ ३२ ॥

नैतद्विशीलेन च दाम्भिकेन न लिङ्गिना स्थापनमत्र कार्यम् ।
विप्रेण कार्यं श्रुतिपारगेण गृहस्थधर्माभिरतेन नित्यम् ॥ ३३ ॥
पाषण्डिनं यस्तु करोति भक्त्या विहाय विप्रान् श्रुतिधर्मयुक्तान् ।
गुरुं प्रतिष्ठादिषु तत्र नूनं कुलक्षयः स्यादचिरादपूज्यः ॥ ३४ ॥
स्थानं पिशाचैः परिगृह्यते वा अपूज्यतां यात्यचिरेण लोकैः ।
विप्रैः कृतं यच्छुभदं कुले स्यात् प्रपूज्यतां याति चिरं च कालम् ॥ ३५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवतास्नानं नाम सप्तषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६७ ॥

इसके बाद चालीस दीप प्रदान करना चाहिये और प्रदक्षिणा भी करनी चाहिये। उस समय निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—'देव! आप ही सूर्य और चन्द्रमाकी ज्योति, बिजली, अग्नि और सभी प्रकारकी ज्योति हैं, आप इस दीपको ग्रहण करें।' फिर देव! यह वनस्पतियोंका अति उत्तम रस, दिव्य गन्धयुक्त और उत्तम गन्ध है, मैंने इसे भक्तिपूर्वक अर्पित किया है। आप इस धूपको ग्रहण करें।' इस मन्त्रका उच्चारणकर विचक्षण पुरुष धूपदान करे। तत्पश्चात् 'बहुमूल्य आभूषणोंसे विभूषित देव! आपको नमस्कार है।' इस भावके मन्त्रद्वारा आभूषण अर्पित करना चाहिये। इस प्रकार सात राततक महोत्सव कर श्वेत वस्त्रधारी यजमान पञ्चरत्नयुक्त तथा श्वेत वस्त्रसे परिवेष्टित चार, आठ, दो अथवा एक देवकुम्भके जलसे—'देवस्य त्वा०—' (वाजस० सं० १।१०) इस मन्त्रसे या आथर्वण तथा साममन्त्रोंसे या नवग्रहयज्ञोंमें अभिषेकके समय प्रयुक्त होनेवाले मन्त्रोंसे अभिषेक करे। फिर स्नानकर देवताओंकी पूजा करनेके बाद स्थापना करानेवालेकी वस्त्र, अलंकार एवं आभूषणोंद्वारा पूजा करे। तत्पश्चात् सभी यज्ञपात्रों, मण्डपकी सामग्रियों तथा मण्डपमें अन्य जो कुछ भी दातव्य वस्तुएँ हों, उन्हें आचार्यको देना चाहिये; क्योंकि गुरुके प्रसन्न होनेपर सभी देवगण प्रसन्न हो जाते हैं। इस देवप्रतिमाके स्थापन-कार्यको शीलरहित, दम्भी और पाखंडीसे नहीं कराना चाहिये, प्रत्युत सदा श्रुतियोंके पारगामी एवं गृहस्थाश्रममें रहनेवाले ब्राह्मणद्वारा ही कराना उचित है। जो व्यक्ति केवल भक्तिके कारण वैदिक धर्मोंमें परायण विद्वान् पण्डितोंको छोड़कर अपने पाखण्डी गुरुको इस कार्यमें नियुक्त करता है, उसका कुल शीघ्र ही अपूज्य और नष्ट हो जाता है उस स्थानपर पिशाचोंका आधिपत्य हो जाता है तथा लोग प्रतिमाको थोड़े ही दिनों बाद अपूज्य समझने लगते हैं। वैदिक ब्राह्मणोंद्वारा करायी गयी स्थापनासे देव-प्रतिमा कुलमें कल्याणकारिणी होती है और चिरकालतक लोग उसकी पूजा करते हैं॥ २४—३५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें देवप्रतिमा—स्नान नामक दो सौ सड़सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २६७॥

दो सौ अड़सठवाँ अध्याय

वास्तु-शान्तिकी विधि

ऋषय ऊचुः

प्रासादाः कीदृशाः सूत कर्तव्या भूतिमिच्छता। प्रमाणं लक्षणं तद्वद् वद विस्तरतोऽधुना॥ १॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! समृद्धिकी इच्छा करनेवालोंको प्रासादों (राजगृह, देवमन्दिर आदि)की रचना किस प्रकार करानी चाहिये? अब उनके प्रमाण और लक्षणोंको विस्तारपूर्वक बतलाइये॥ १॥

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रासादविधिनिर्णयम्। वास्तौ परीक्षिते सम्यग् वास्तुदेहविचक्षणः॥ २॥
वास्तूपशमनं कुर्यात् समिद्भिर्बलिकर्मणा। जीर्णोद्धारे तथोद्याने तथा गृहनिवेशने॥ ३॥
नवप्रासादभवने प्रासादपरिवर्तने। द्वाराभिवर्तने तद्वत् प्रासादेषु गृहेषु च॥ ४॥
वास्तूपशमनं कुर्यात् पूर्वमेव विचक्षणः। एकाशीतिपदं लिख्य वास्तुमध्ये च पृष्ठतः॥ ५॥
होमस्त्रिमेखले कार्यः कुण्डे हस्तप्रमाणके। यवैः कृष्णतिलैस्तद्वत् समिद्भिः क्षीरवृक्षजैः॥ ६॥
पालाशैः खादिरैश्चापि मधुसर्पिःसमन्वितैः। कुशदूर्वामयैर्वापि मधुसर्पिःसमन्वितैः॥ ७॥
कायस्तु पञ्चभिर्बिल्वैर्बिल्वबीजैरथापि वा। होमान्ते भक्ष्यभोज्यैस्तु वास्तुदेहेर्बलिं हरेत्॥ ८॥

तद्वद्विशेषनैवेद्यमेवं दद्यात् क्रमेण तु । ईशकोणे घृताक्तं तु शिखिने विनिवेदयेत् ॥ ९ ॥
ओदनं सफलं दद्यात् पर्जन्याय घृतान्वितम् । जयाय च ध्वजान् पीतान् पैष्टं कूर्मं च संन्यसेत् ॥ १० ॥
इन्द्राय पञ्चरत्नानि पैष्टं च कुलिशं तथा । वितानकं च सूर्याय धूम्रं सक्तुं तथैव च ॥ ११ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषिवृन्द ! अब मैं प्रासाद-विधिका निर्णय बतला रहा हूँ । वास्तुके शरीरको जाननेवाला पुरुष वास्तुकी भलीभाँति परीक्षा कर लेनेके बाद (दोष दीखनेपर) बलिकर्म तथा समिधाओंद्वारा वास्तुकी शान्ति करे । जीर्ण प्रासादके उद्धार, वाटिकाके आरोपण, नूतन गृहमें प्रवेश, नवीन प्रासाद अथवा भवनके निर्माण, प्रासादपरिवर्तन, प्रासाद तथा गृहोंमें द्वारकी रचना—इन सभी अवसरोंपर विद्वान् पुरुषको पहले ही वास्तुकी शान्ति—पूजा करानी चाहिये । इसके लिये वास्तुके मध्यभागमें पृष्ठप्रदेशपर इक्यासी पदोंवाला चक्र बनाना चाहिये । फिर एक हाथ गहरे तथा चौड़े कुण्डमें, जो तीन मेखलाओंसे युक्त हो, जौ, काले तिल तथा दुग्धवाले (वट, पाकड़, पीपल, गूलर आदि) वृक्षोंकी समिधाओंद्वारा हवन करना चाहिये । हवनमें मधु और घृतसे संयुक्त पलाश या खदिरकी समिधाओंका या मधु-घृत-संयुक्त कुश और दूर्वाका अथवा पाँच बिल्व-फल या उसके बीजोंका उपयोग करना चाहिये । हवनके अन्तमें विविध भक्ष्य सामग्रियोंद्वारा वास्तुप्रदेशमें क्रमसे बलि तथा विशेष नैवेद्य भी देना चाहिये । ईशानकोणमें घृतसे संयुक्त नैवेद्य अग्निके लिये समर्पित करे । पर्जन्यके लिये फल-घृतसंयुक्त ओदन तथा जयके लिये पीली ध्वजा और आटेका बना हुआ कूर्म देना चाहिये । इन्द्रके लिये पञ्चरत्न तथा आटेका बना हुआ वज्र तथा सूर्यके लिये धूम्रवर्णका वितान और सत्तू देना चाहिये ॥२–११॥

सत्याय घृतगोधूमं मत्स्यं दद्याद् भृशाय च । शष्कुलीश्चान्तरिक्षाय दद्यात् सक्तूंश्च वायवे ॥ १२ ॥
लाजाः पूष्णे तु दातव्या वितथे चणकौदनम् । बृहत्क्षत्राय मध्वन्नं यमाय पिशितौदनम् ॥ १३ ॥
गन्धौदनं च गन्धर्वे भृङ्गराजस्य भृङ्गिकाम् । मृगाय यावकं दद्यात् पितृभ्यः कृसरा मता ॥ १४ ॥
दौवारिके दन्तकाष्ठं पैष्टं कृष्णाबलिं तथा । सुग्रीवेऽपूपकं दद्यात् पुष्पदन्ताय पायसम् ॥ १५ ॥
कुशस्तम्बेन संयुक्तं तथा पद्मं च वारुणे । विष्टं हिरण्मयं दद्यादसुराय सुरा मता ॥ १६ ॥
घृतौदनं च शेषाय यवान्नं पापयक्ष्मणे । घृतलड्डुकांस्तु रोगाय नागे पुष्पफलानि च ॥ १७ ॥
सर्पिर्मुख्याय दातव्यं मुद्गौदनमतः परम् । भल्लाटस्थानके दद्यात् सोमाय घृतपायसम् ॥ १८ ॥
भगाय शालिकं पिष्टमदित्यै पोलिकास्तथा । दित्यै तु पूरिका दद्यादित्येवं बाह्यतो बलिः ॥ १९ ॥
क्षीरं यमाय दातव्यमापवत्साय वै दधि । सावित्रे लड्डुकान् दद्यात् समरीचं कुशौदनम् ॥ २० ॥
सवितुर्गुडपूपांश्च जयाय घृतचन्दनम् । विवस्वते पुनर्दद्याद् रक्तचन्दनपायसम् ॥ २१ ॥
हरितालौदनं दद्यादिन्द्राय घृतसंयुतम् । घृतौदनं च मित्राय रुद्राय घृतपायसम् ॥ २२ ॥

इसी प्रकार सत्यके लिये घी और गेहूँ, भृशको अन्न, अन्तरिक्षको पूड़ी, वायुको सत्तू और पूषाको लावा देना चाहिये । वितथको चना और ओदन, बृहत्क्षत्रको मधु और अन्न, यमको फलका गूदा और ओदन, गन्धर्वको सुगन्ध और ओदन, भृङ्गराजको भृङ्गिका, मृगको जौका सत्तू और पितरोंको खिचड़ी देना चाहिये । दौवारिकको दन्तकाष्ठ तथा आटेकी कृष्ण बलि, सुग्रीवको पूआ तथा पुष्पदन्तको खीर प्रदान करे । वरुणको कुश-समूहसे संयुक्त पद्म और सुवर्णमय पिष्टक देना चाहिये । असुरके लिये मदिरा मानी गयी है । शेषको घृत-संयुक्त ओदन, पापयक्ष्माको जौका अन्न, रोगको घीका बना हुआ लड्डू, नागको पुष्प और फल, मुख्य (वासुकि) को घी तथा भल्लाटके स्थानपर मूँग और ओदन तथा सोमके लिये घृत और खीर देना चाहिये । भगके लिये साठीके चावलका पिष्टक, अदितिके लिये पोलिक और दितिके

लिये पूरीकी बलि देनी चाहिये। यह वास्तुके बाहरी भागकी बलि है। यमको दूध और आपवत्सको दही देनेका विधान है। सावित्रीको लड्डू तथा मरीचके साथ कुशमिश्रित ओदन प्रदान करे। सविताको गुड-मिश्रित पूआ, जयको घृत और चन्दन तथा विवस्वान्‌को लाल-चन्दन और खीर दे। इन्द्रको घृतसमेत हरिताल-युक्त ओदन, मित्रको घृतमिश्रित ओदन तथा रुद्रको घृत और खीर दे॥ १२–२२॥

आमं पक्वं तथा मांसं देयं स्याद् राजयक्ष्मणे। पृथ्वीधराय मांसानि कूष्माण्डानि च दापयेत्॥ २३॥
शर्करापायसं दद्यादर्यम्णे पुनरेव हि। पञ्चगव्यं यवांश्चैव तिलाक्षतमयं चरुम्॥ २४॥
भक्ष्यं भोज्यं च विविधं ब्रह्मणे विनिवेदयेत्। एवं सम्पूजिता देवाः शान्तिं कुर्वन्ति ते सदा॥ २५॥
सर्वेभ्यः काञ्चनं दद्याद् ब्रह्मणे गां पयस्विनीम्। राक्षसीनां बलिर्देयो अपि यादृग् यथा शृणु॥ २६॥
मांसौदनं घृतं पद्मकेसरं रुधिरान्वितम्। ईशानभागमाश्रित्य चरक्यै विनिवेदयेत्॥ २७॥
मांसौदनं च रुधिरं हरिद्रौदनमेव च। आग्नेयीं दिशमाश्रित्य विदार्यै विनिवेदयेत्॥ २८॥
दध्योदनं सरुधिरमस्थिखण्डैश्च संयुतम्। पीतरक्तं बलिं दद्यात् पूतनायै सरक्षसे॥ २९॥
वायव्यां पापराक्षस्यै मत्स्यमांसं सुरासवम्। पायसं चापि दातव्यं स्वनाम्ना सर्वतः क्रमात्॥ ३०॥
नमस्कारान्तयुक्तेन प्रणवाद्येन संयुतः। ततः सर्वौषधीस्नानं यजमानस्य कारयेत्॥ ३१॥

राजयक्ष्माको पके हुए तथा कच्चे फलका गूदा देना चाहिये। पृथ्वीधरको मांसखण्ड और कुम्हड़े दे। अर्यमाके लिये शक्कर और खीर, पञ्चगव्य, जौ, तिल, अक्षत तथा चरु दे। ब्रह्माके लिये विविध प्रकारके भक्ष्य और भोज्य पदार्थ देने चाहिये। इस प्रकार पूजित देवगण सर्वदा शान्ति प्रदान करते हैं। अन्य उपस्थित ब्राह्मणोंके लिये सुवर्णका तथा ब्रह्मास्थानीय ब्राह्मणको दूध देनेवाली गौका दान करना चाहिये। अब राक्षसियोंके लिये जिस प्रकारकी बलि दी जानी चाहिये, उसे सुनिये। फलका गूदायुक्त ओदन, घृत, पद्मकेसर—इन्हें ईशानकोणकी ओर चरकी नामकी राक्षसीको निवेदित करना चाहिये। फलका गूदा-मिश्रित ओदन तथा हरिद्रायुक्त ओदन—इन्हें अग्निकोणकी ओर विदारी नाम्नी राक्षसीके लिये निवेदित करना चाहिये। दही, ओदन, हड्डियोंके टुकड़े तथा पीले और लाल रंगकी बलि राक्षससहित पूतना नामकी राक्षसीको नैर्ऋत्यकोणमें देनी चाहिये। वायव्यकोणमें पापा नामकी राक्षसीके लिये खीर देना चाहिये। बलि देते समय क्रमशः सभी जगह आदिमें प्रणव और अन्तमें नमस्कारसहित अपने नामका उच्चारण कर लेना चाहिये। तदनन्तर यजमानको सर्वौषधिसे युक्त जलसे स्नान कराना चाहिये॥ २३–३१॥

द्विजान् सुपूजयेद् भक्त्या ये चान्ये गृहमागताः। एतद्वास्तूपशमनं कृत्वा कर्म समारभेत्॥ ३२॥
प्रासादभवनोद्यानप्रारम्भे विनिवर्त्तने। पुरवेश्मप्रवेशेषु सर्वदोषापनुत्तये॥ ३३॥
रक्षोघ्नपावमानेन सूक्तेन भवनादिकम्। नृत्यमङ्गलवाद्येन कुर्याद् ब्राह्मणवाचनम्॥ ३४॥
अनेन विधिना यस्तु प्रतिसंवत्सरं बुधः। गृहे वायतने कुर्यान्न स दुःखमवाप्नुयात्॥ ३५॥
न च व्याधिभयं तस्य न च बन्धुधनक्षयः। जीवेद् वर्षशतं स्वर्गे कल्पमेकं च तिष्ठति॥ ३६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वास्तुदोषोपशमनं नामाष्टषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २६८॥

यजमानको भक्तिपूर्वक अपने गृहपर आये हुए ब्राह्मणोंकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार वास्तुकी शान्ति करनेके बाद गृहनिर्माण कार्य प्रारम्भ करना चाहिये। प्रासाद, भवन, उद्यानके प्रारम्भ करते समय अथवा उनके उद्यापनके समय तथा पुर या गृहमें प्रवेश करते समय सभी दोषोंके विनाशार्थ रक्षोघ्न और

पावमान सूक्तोंके पाठ करानेके बाद नृत्य, माङ्गलिक गीत और वाद्योंके साथ ब्राह्मणोंद्वारा वेदपाठ कराना चाहिये। जो बुद्धिमान् पुरुष प्रतिवर्ष गृह अथवा मन्दिरके कार्यमें उपर्युक्त विधिका पालन करता है, वह दुःखका भागी नहीं होता। उसे न तो व्याधिका भय होता है, न उसके बन्धुजनों तथा सम्पत्तिका विनाश ही होता है, प्रत्युत वह इस लोकमें सौ वर्षतक जीवित रहता है और स्वर्गमें एक कल्पपर्यन्त निवास करता है ॥३२-३६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वास्तुदोष-शमन नामक दो सौ अड़सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २६८ ॥

दो सौ उनहत्तरवाँ अध्याय

प्रासादोंके भेद और उनके निर्माणकी विधि

सूत उवाच

एवं वास्तुबलिं कृत्वा भजेत् षोडशभागिकम्। तस्य मध्ये चतुर्भिस्तु भागैर्गर्भं तु कारयेत् ॥ १ ॥
भागद्वादशकं सार्द्धं ततस्तु परिकल्पयेत्। चतुर्दिक्षु तथा ज्ञेयं निर्गमं तु ततो बुधैः ॥ २ ॥
चतुर्भागेन भित्तीनामुच्छ्रायः स्यात् प्रमाणतः। द्विगुणः शिखरोच्छ्रायो भित्त्युच्छ्रायप्रमाणतः ॥ ३ ॥
शिखरार्धस्य चार्धेन विधेया तु प्रदक्षिणा। गर्भसूत्रद्वयं चाग्रे विस्तारो मण्डपस्य तु ॥ ४ ॥
आयतः स्यात् त्रिभिर्भागैर्भद्रयुक्तः सुशोभनः। पञ्चभागेन सम्भज्य गर्भमानं विचक्षणः ॥ ५ ॥
भागमेकं गृहीत्वा तु प्राग्ग्रीवं कल्पयेद् बुधः। गर्भसूत्रसमाद् भागादग्रतो मुखमण्डपः ॥ ६ ॥
एतत् सामान्यमुद्दिष्टं प्रासादस्येह लक्षणम्। तथान्यं तु प्रवक्ष्यामि प्रासादं लिङ्गमानतः ॥ ७ ॥
लिङ्गपूजाप्रमाणेन कर्तव्या पीठिका बुधैः। पिण्डिकार्धेन भागः स्यात् तन्मानेन तु भित्तयः ॥ ८ ॥
बाह्यभित्तिप्रमाणेन उत्सेधस्तु भवेत् पुनः। भित्त्युच्छ्रायात् तु द्विगुणः शिखरस्य समुच्छ्रयः ॥ ९ ॥
शिखरस्य चतुर्भागात् कर्तव्या च प्रदक्षिणा। प्रदक्षिणायास्तु समस्त्वग्रतो मण्डपो भवेत् ॥ १० ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषिगणो! इस प्रकार उपर्युक्त बलि प्रदान करनेके उपरान्त वास्तु (मन्दिर)को सोलह भागोंमें विभक्त करे। फिर उसके मध्य भागके चार भागोंको केन्द्र मानकर मध्यभागकी ओर शेष बारह भागोंमें प्रासादकी कल्पना करे। बुद्धिमान् व्यक्तिको चारों दिशाओंमें बाहर निकलनेका मार्ग भी जानना चाहिये। दीवालकी ऊँचाई वास्तुमानकी चौथाईके तुल्य होनी चाहिये और दीवालकी ऊँचाईके प्रमाणसे दूनी शिखरकी ऊँचाई होनी चाहिये। शिखरकी ऊँचाईके चौथाई मानसे प्रदक्षिणा बनानी चाहिये। मण्डपके अग्रभागका विस्तार गर्भके मानसे दूना होना चाहिये। इसकी लम्बाई तीन भागोंसे युक्त होगी, जो भद्रयुक्त और सुन्दर रहेगी। विद्वान् पुरुषको गर्भमानको पाँच भागोंमें विभक्तकर एक भागमें प्राग्ग्रीवकी कल्पना करनी चाहिये। गर्भसूत्रके समान आगे मुखमण्डपकी रचना करनी चाहिये। यह सामान्यतया सभी प्रासादोंका लक्षण बतलाया गया है। अब अन्य प्रासाद (शिवमन्दिर)की रचनाकी विधि बतला रहा हूँ, जो लिङ्गमानके आधारपर निर्मित होता है। बुद्धिमान् पुरुषोंको लिङ्ग-पूजाके लिये उपयोगी पीठिका तैयार करनी चाहिये। पिण्डिकाके अर्धभागको विभक्त कर उक्त अधाश-मानमें उसके दीवालकी रचना करनी चाहिये एवं बाहरी दीवालके प्रमाणके अनुसार उसकी ऊँचाई करनी चाहिये। दीवालकी ऊँचाईसे दूनी शिखरकी ऊँचाई होनी चाहिये। शिखरके चतुर्थ भागसे प्रदक्षिणा बनानी चाहिये। प्रदक्षिणाके बराबर मानका ही आगेका मण्डप निर्मित करना चाहिये ॥ १-१० ॥

तस्य चार्धेन कर्तव्यस्त्वग्रतो मुखमण्डपः। प्रासादान्निर्गतौ कार्यौ कपोलौ गर्भमानतः ॥ ११ ॥
ऊर्ध्वं भित्त्युच्छ्रयात् तस्य मञ्जरीं तु प्रकल्पयेत्। मञ्जर्याश्चार्धभागेन शुकनासां प्रकल्पयेत् ॥ १२ ॥
ऊर्ध्वं तथार्धभागेन वेदीबन्धो भवेदिह। वेद्याश्चोपरि यच्छेषं कण्ठश्चामलसारकः ॥ १३ ॥
एवं विभज्य प्रासादं शोभनं कारयेद् बुधः। अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि प्रासादस्येह लक्षणम् ॥ १४ ॥
गर्भमानप्रमाणेन प्रासादं शृणुत द्विजाः। विभज्य नवधा गर्भं मध्ये स्याल्लिङ्गपीठिका ॥ १५ ॥
पादाष्टकं तु रुचिरं पार्श्वतः परिकल्पयेत्। मानेन तेन विस्तारो भित्तीनां तु विधीयते ॥ १६ ॥
पादं पञ्चगुणं कृत्वा भित्तीनामुच्छ्रयो भवेत्। स एव शिखरस्यापि द्विगुणः स्यात् समुच्छ्रयः ॥ १७ ॥
चतुर्धा शिखरं भज्य अर्धभागद्वयस्य तु। शुकनासं प्रकुर्वीत तृतीये वेदिका मता ॥ १८ ॥
कण्ठमामलसारं तु चतुर्थे परिकल्पयेत्। कपोलयोस्तु संहारो द्विगुणोऽत्र विधीयते ॥ १९ ॥
शोभनैः पत्रवल्लीभिरण्डकैश्च विभूषितः। प्रासादोऽयं तृतीयस्तु मया तुभ्यं निवेदितः ॥ २० ॥

उसके आधे भागमें आगेकी ओर मुखमण्डप बनाना चाहिये। गर्भमानके अनुसार प्रासादसे बाहर निकले दो कपोलोंकी रचना करनी चाहिये। उसकी दीवालकी ऊँचाईके ऊपर मञ्जरीकी कल्पना करनी चाहिये। मंजरीके अर्धभागमें शुकनासाकी और ऊपरवाले आधे भागमें वेदीकी रचना करानी चाहिये। वेदीके ऊपर जो भाग शेष रह जाता है, वह कण्ठ और अमलसारक कहलाता है। इस प्रकार विभागकर बुद्धिमान्‌को मनोहर प्रासादकी रचना करनी चाहिये। द्विजवरो! अब अन्य प्रकारके प्रासादके लक्षणोंको बतला रहा हूँ, सुनिये। गर्भमानके अनुसार प्रासादको नौ भागोंमें विभक्तकर गर्भके मध्यमें लिङ्गपीठिका स्थापित करनी चाहिये और उसके अगल-बगलमें रुचिर पादाष्टककी रचना करनी चाहिये। उन्हींके मानके अनुसार दीवालका विस्तार करना चाहिये। उस पादको पाँचसे गुणा करनेपर जो गुणनफल हो, वही दीवालकी और उसकी दूनी शिखरकी ऊँचाई होती है। शिखरको चार भागोंमें विभक्तकर आधे दो भागोंमें शुकनासा बनानी चाहिये, तीसरे भागमें वेदिका मानी गयी है तथा चतुर्थभागमें कण्ठ और अमलसारकी रचना करनी चाहिये। इस प्रासादमें कपोलोंका मान दूना माना गया है। यह मनोहर पत्तियों, लताओं तथा अण्डकोंसे विभूषित तीसरे ढंगके प्रासादका वर्णन मैंने आपलोगोंको बतलाया है ॥ ११–२० ॥

सामान्यमपरं तद्वत् प्रासादं शृणुत द्विजाः। त्रिभेदं कारयेत् क्षेत्रं यत्र तिष्ठन्ति देवताः ॥ २१ ॥
रथाङ्कस्तेन मानेन बाह्यभागविनिर्गतः। नेमी पादेन विस्तीर्णा प्रासादस्य समन्ततः ॥ २२ ॥
गर्भं तु द्विगुणं कुर्यात् तस्य मानं भवेदिह। स एव भित्तेरुत्सेधो द्विगुणः शिखरो मतः ॥ २३ ॥
प्राग्ग्रीवः पञ्चभागेन निष्कासस्तस्य चोच्यते। कारयेत् सुषिरं तद्वत् प्राकारस्य त्रिभागतः ॥ २४ ॥
प्राग्ग्रीवं पञ्चभागेन निष्कासेण विशेषतः। कुर्याद् वा पञ्चभागेन प्राग्ग्रीवे कर्णमूलतः ॥ २५ ॥
स्थापयेत् कनकं तत्र गर्भान्ते द्वारमूलतः। एवं तु त्रिविधं कुर्याज्ज्येष्ठमध्यकनीयसम् ॥ २६ ॥
लिङ्गमानानुभेदेन रूपभेदेन वा पुनः। एते समासतः प्रोक्ता नामतः शृणुताधुना ॥ २७ ॥
मेरुमन्दरकैलासकुम्भसिंहमृगास्तथा। विमानच्छन्दकस्तद्वच्चतुरस्रस्तथैव च ॥ २८ ॥
अष्टास्रः षोडशास्रश्च वर्तुलः सर्वभद्रकः। सिंहास्यो नन्दनश्चैव नन्दिवर्धनकस्तथा ॥ २९ ॥
हंसो वृषः सुवर्णेशः पद्मकोऽथ समुद्गकः। प्रासादा नामतः प्रोक्ता विभागं शृणुत द्विजाः ॥ ३० ॥

द्विजश्रेष्ठो! अब अन्य साधारण प्रकारके प्रासाद (देवमन्दिरों)का वर्णन सुनिये। जहाँ देवता स्थित होते हैं, उस क्षेत्रको तीन भागोंमें विभक्तकर उसी परिमाणमें बाहरकी ओर निकला हुआ रथाङ्क बनाना चाहिये। प्रासादके चारों ओर चतुर्थ भागमें विस्तृत नेमी बनानी चाहिये। मध्य भागको उससे दूना करना चाहिये, वही उसका मान

है और वही दीवालकी ऊँचाई है। शिखरकी ऊँचाई उससे दूनी मानी गयी है। उस प्रासादका प्राग्ग्रीव पाँचवें भागमें होना चाहिये। यह उसका निष्कास कहा जाता है। उसे प्राकारके तीन भागमें छिद्रयुक्त बनाना चाहिये। प्राग्ग्रीवको पाँच भागोंमें विशेषतया निष्काससे बनाना चाहिये अथवा कर्णमूलसे पाँच भागोंमें प्राग्ग्रीवकी कल्पना करनी चाहिये। वहाँ द्वारमूलसे गर्भान्तमें कनककी स्थापना करनी चाहिये। इस प्रकार इसे ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ—इन तीन प्राकारोंवाला बनाना चाहिये। वे चाहे लिङ्गके परिमाण-भेदसे हों या रूप-भेदसे हों। इन प्रासादोंके निर्माणकी विधि मैंने संक्षेपमें बतला दी, अब उनके नाम सुनिये। मेरु, मन्दर, कैलास, कुम्भ, सिंह, मृग, विमान, छन्दक, चतुरस्र, अष्टास्र, षोडशास्र, वर्तुल, सर्वभद्रक, सिंहास्य, नन्दन, नन्दिवर्धन, हंस, वृष, सुवर्णेश, पद्मक और समुद्गक—ये प्रासादोंके नाम हैं। द्विजो! अब इनके विभागोंको सुनिये ॥ २१–३० ॥

शतशृङ्गश्चतुर्द्वारो भूमिकाषोडशोच्छ्रितः। नानाविचित्रशिखरो मेरुः प्रासाद उच्यते ॥ ३१ ॥
मन्दरो द्वादशप्रोक्तः कैलासो नवभूमिकः। विमानच्छन्दकस्तद्वदनेकशिखराननः ॥ ३२ ॥
स चाष्टभूमिकस्तद्वत् सप्तभिर्नन्दिवर्धनः। विषाणकसमायुक्तो नन्दनः स उदाहृतः ॥ ३३ ॥
षोडशास्रसमायुक्तो नानारूपसमन्वितः। अनेकशिखरस्तद्वत् सर्वतोभद्र उच्यते ॥ ३४ ॥
चित्रशालासमोपेतो विज्ञेयः पञ्चभूमिकः। वलभीच्छन्दकस्तद्वदनेकशिखराननः ॥ ३५ ॥
वृषस्योच्छ्रायतस्तुल्यो मण्डलश्चास्रवर्जितः। सिंहः सिंहाकृतिर्ज्ञेयो गजो गजसमस्तथा ॥ ३६ ॥
कुम्भः कुम्भाकृतिस्तद्वद् भूमिकानवकोच्छ्रयः। अङ्गुलीपुटसंस्थानः पञ्चाण्डकविभूषितः ॥ ३७ ॥
षोडशास्रः समंताच्च विज्ञेयः स समुद्गकः। पार्श्वयोश्चन्द्रशालेऽस्य उच्छ्रायो भूमिकाद्वयम् ॥ ३८ ॥
तथैव पद्मकः प्रोक्त उच्छ्रायो भूमिकात्रयम्। षोडशास्रः स विज्ञेयो विचित्रशिखरः शुभः ॥ ३९ ॥
मृगराजस्तु विख्यातश्चन्द्रशालविभूषितः। प्राग्ग्रीवेण विशालेन भूमिकासु षडुन्नतः ॥ ४० ॥
अनेकश्चन्द्रशालश्च गजः प्रासाद इष्यते।

सौ शृङ्ग तथा चार द्वारवाला, सोलह खण्डोंमें ऊँचा, अनेकों विचित्र शिखरोंसे युक्त प्रासाद 'मेरु' कहलाता है। इसी प्रकार 'बारह खण्डोंवाला' मन्दर तथा नव खण्डोंवाला 'कैलास' कहा गया है। 'विमान' और 'छन्दक' भी उन्हींकी भाँति अनेक शिखरों और मुखोंसे युक्त तथा आठ खण्डोंवाले होते हैं। सात खण्डोंवाला 'नन्दिवर्धन' होता है। जो विषाणकसे संयुक्त रहता है, उसे 'नन्दन' कहा जाता है। जो प्रासाद सोलह पहलोंवाला, विविध रूपोंसे सुशोभित और अनेक शिखरोंसे संवलित होता है, उसे 'सर्वतोभद्र' कहते हैं। इसे चित्रशालासे संयुक्त तथा पाँच खण्डोंवाला जानना चाहिये। प्रासादके वलभी (बुर्ज) तथा छन्दकको भी उसी प्रकार अनेक शिखरों और मुखोंसे युक्त बनाना चाहिये। ऊँचाईमें वृषभके समान तथा मण्डलमें बिना पहलके सिंहप्रासादको सिंहकी आकृतिका तथा गजको गजके समान ही जानना चाहिये। कुम्भ आकृतिमें कुम्भकी भाँति और ऊँचाईमें नौ खण्डका हो। जिसकी स्थिति अंगुलीपुटकी भाँति हो, जो पाँच अण्डोंसे विभूषित और चारों ओरसे सोलह पहलवाला हो, उसे 'समुद्गक' जानना चाहिये। इसके दोनों पार्श्वोंमें चन्द्रशालाएँ हों और ऊँचाई दो खण्डोंसे युक्त हो। उसी प्रकारकी बनावट 'पद्मक'की भी होनी चाहिये, केवल ऊँचाईमें यह तीन खण्डोंवाला हो। इसे विचित्र शिखरोंसे युक्त, शुभदायक और सोलह पहलोंवाला जानना चाहिये। 'मृगराज' प्रासाद वह है, जो चन्द्रशालासे विभूषित, प्राग्ग्रीवसे युक्त और छः खण्डों (मंजिलों) तक ऊँचा हो। अनेक चन्द्रशालाओंसे युक्त प्रासाद 'गज' कहलाता है ॥ ३१–४०१/२ ॥

(क्रमशः)

आवश्यक सूचना

डाकसे पुस्तकें मँगवानेवाले सज्जनोंसे निवेदन है कि हमारी पुस्तकें यहाँसे मँगवानेकी अपेक्षा अपने समीपके पुस्तक-विक्रेतासे प्राप्त करनेका प्रयास करें, जिससे आपको समय एवं भारी डाकखर्चकी बचत होगी और पुस्तकें भी आप स्वयं देखकर अच्छी ले सकेंगे।

रामचरितमानस सटीक मोटा टाइपका मूल्य ३०.०० है, जिसे रजिस्टर्ड पैकेटद्वारा मँगानेपर ६.७५ एवं वी० पी० द्वारा मँगानेपर ९.७५ डाकखर्च और लगेंगे।

जो ग्राहक यहाँपर मनीआर्डरद्वारा रुपये भेजते हैं उनका मनीआर्डर कार्यालयको मिलनेमें करीब एक माहका समय लग जाता है। अतः जल्दी पुस्तकें मँगानेवाले सज्जन मनीआर्डरसे रुपये न भेजकर गीताप्रेसके नाम गोरखपुरके किसी बैंकका ड्राफ्ट भेजकर उन्हें मँगा सकते हैं। इससे पुस्तकें भेजनेमें भी सुविधा रहेगी।

—व्यवस्थापक

निम्नलिखित पुस्तकें उपलब्ध हैं—

पुस्तक	मूल्य	पुस्तक	मूल्य
भागवत सटीक (प्रथम खण्ड)	२५.००	हनुमानबाहुक	.४०
भागवत सटीक (द्वितीय खण्ड)	२५.००	पार्वती-मंगल	.३०
भागवत सुधासागर (हिन्दी)	३०.००	वैराग्य-संदीपनी	.२५
गीता गुजराती भाषा टीका	६.००	बरवैरामायण	.१५
गीता मराठी अनुवाद	६.००	आशाकी नयी किरणें	३.५०
गीता मझोली, सजिल्द	४.००	अमृतके घूँट	३.००
गीता-पञ्चरत्न	१.५०	दुर्गासप्तशती, सटीक	३.००
गीताका भक्तियोग	४.००	मधुर	३.००
गीताका आरम्भ	३.५०	संतवाणी	२.५०
गीताकी सम्पत्ति और श्रद्धा	३.००	आनन्दमय जीवन	२.५०
गीताका कर्मयोग खण्ड १	३.२५	भगवच्चर्चा (भाग २)	२.५०
,, ,, ,, २	४.००	विवेक-चूडामणि	२.००
गीता-दैनन्दिनी १९८५	२.५०	पातञ्जलयोगदर्शन, सटीक	१.८०
भजन-संग्रह सम्पूर्ण	५.००	जीवनका कर्तव्य	१.५०
अमृत-कण	४.५०	आत्मोद्धारके सरल उपाय	१.५०
विष्णुसहस्रनाम शांकरभाष्य	४.००	प्रेमदर्शन (भक्तिसूत्र)	२.००
रामचरितमानस मूल मझला	७.५०	विदुरनीति	१.५०
रामचरितमानस मूल गुटका	५.००	कल्याणकारी प्रवचन	१.५०
दोहावली	२.००	प्रेम-सत्संग-सुधा-माला	१.२०
रामाज्ञा-प्रश्न	१.२५	बालकोंकी बातें	१.५०
श्रीकृष्ण-गीतावली	.६०	रामायणके आदर्श पात्र	१.५०
		सती द्रौपदी	१.५०

स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा	१.२५
तत्त्वचिन्तामणि, भाग ६	३.००
सत्संगमाला	१.२५
चोखी कहानियाँ	१.२५
पिताकी सीख	१.२०
बड़ोंके जीवनसे शिक्षा	१.००
सच्चे ईमानदार बालक	.८०
दयालु-परोपकारी बालक-बालिकाएँ	.७५
वीर बालिकाएँ	.७५
साधन-पथ	.७५
वीर बालक	१.००
आदर्श धर्म (पढ़ो समझो और करो, भाग ४)	१.२५
भलेका भला और बुरेका बुरा (पढ़ो, समझो और करो, भाग ५)	१.५०
उपकारका बदला (पढ़ो, समझो और करो, भाग ६)	१.५०
असीम नीचता और असीम साधुता (पढ़ो, समझो और करो, भाग ७)	१.५०
नकली और असली प्रेम (पढ़ो, समझो और करो, भाग ८)	१.५०
भगवान्के सामने सच्चा सो सच्चा (पढ़ो, समझो और करो, भाग ९)	१.५०
आनन्दके आँसू (पढ़ो, समझो और करो, भाग ११)	१.५०
गुरु-माता-पिताके भक्त बालक	१.००
बालकोंके कर्तव्य	.६०
लीला-चित्र-मंदिर-दोहावली	.६०
भगवान्पर विश्वास	.८०
बालचित्र-रामायण	.८०
सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र	.७५
स्त्री-धर्म-प्रश्नोत्तरी	.६०
मानव-धर्म	.६०
गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य	.५०
गीता-निबन्धावली	.५०
बाल-शिक्षा	.५०
बालकके गुण	.४०
बाल-अमृत-वचन	.४०
ब्रह्मचर्य	.४०
कल्याणकारी आचरण	.४०
तर्पण एवं बलिवैश्वदेवविधि	.६०
बालकोंकी सीख	.३५
बालकोंके आचरण	.३५
ध्यान और मानसिक पूजा	.३०
ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप	.३०
भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारी-धर्म	.३०
रामायण-मध्यमा-परीक्षा-पाठ्य-पुस्तक	.३५
विष्णुसहस्रनामस्तोत्र सटीक	.५०
नवधा-भक्ति	.३०
सीताराम-भजन	.३५
हरेराम-भजन-माला	.३०
भरतजीमें नवधा भक्ति	.२५
बालकोंकी बोलचाल	.२५
मूलरामायण	.२५
रामसहस्रनामस्तोत्रम्	.२५
श्रीरामगीता	.२५
हनुमानचालीसा	.२५
नारायण-कवच	.२०
अमोघ शिव-कवच	.२०
भगवन्नाम	.२०
प्रश्नोत्तरी	.२०
तीन आदर्श देवियाँ	.२०
श्रीसीताके चरित्रसे आदर्श शिक्षा	.२०
सत्संगकी सार बातें	.२०
सच्चा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय	.२०
गीता पढ़नेके लाभ	.२०
आनन्दकी लहरें	.२०